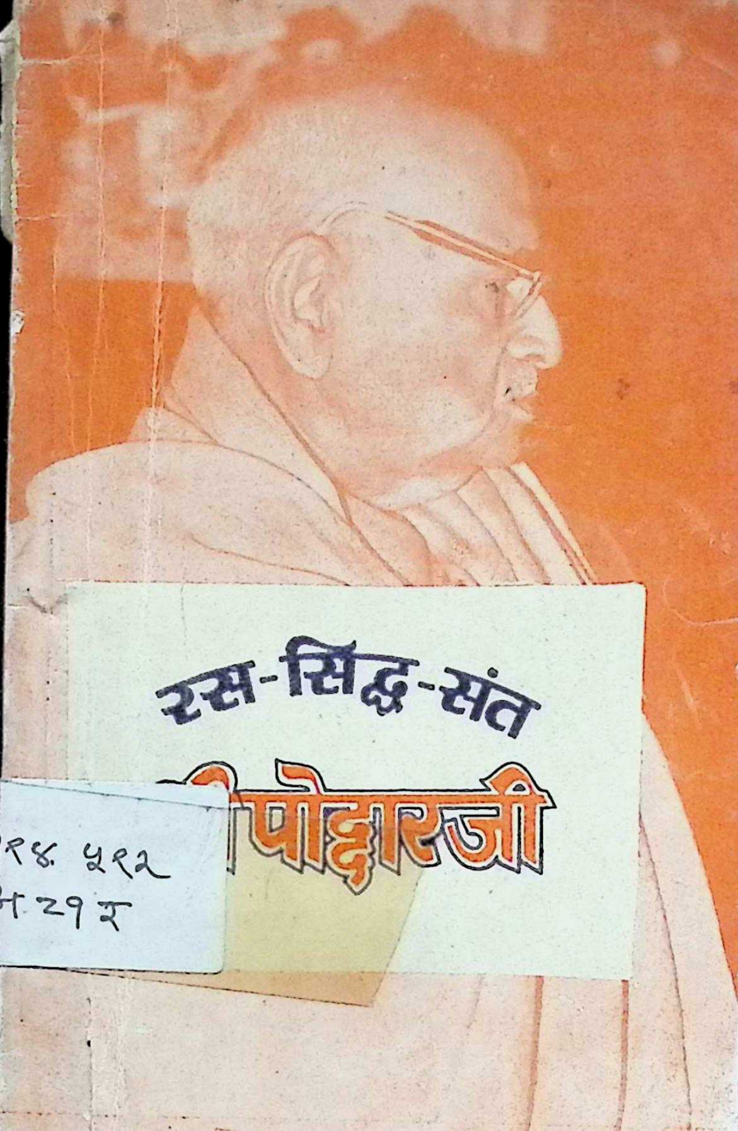


रस-सिद्ध-संत

पोद्दारजी

१४. ५१२
२९२

॥ श्रीहरिः ॥

रस-सिद्ध-संत
श्रीपोद्दारजी

सम्पादक

कृष्णचन्द्र अग्रवाल

प्रकाशक :

कृष्णचन्द्र अग्रवाल
हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समिति
गीतावाटिका, गोरखपुर - २७३ ००६

प्रकाशन :

सं० २०४२ वि०
प्रथम संस्करण— ११००
सं० २०४५ वि०
द्वितीय परिवर्धित संस्करण— २१००

कुल मुद्रण— ३२००

मूल्य :
चार रुपये मात्र

2120

मुद्रक :

संस्थान प्रेस,
गीतावाटिका, गोरखपुर-२७३ ००६

॥ श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ॥

मेरी मान्यता
मेरी भावना

'कल्याण' मासिक पत्रिकाके यशस्वी सम्पादक एवं विपुल सत्साहित्यके स्रष्टा नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके लोकोत्तर व्यक्तित्वकी मेरे मनपर गहरी छाप है। जीवनमें केवल सात दिन ही महामहिम श्रीभाईजीकी समीपताका अलभ्य लाभ प्राप्त हुआ है। वह अनुपम समागम मेरे लिये चिर-स्मरणीय है। मुझे उन दिनों ऐसा लगता था कि गीतावाटिका मानो 'राधा-वाटिका' है।

मेरी दृढ़ मान्यता है कि महाभावस्वरूपा श्रीरासेश्वरीजू और रसराजस्वरूप श्रीरासेश्वरके निजी

परिकर श्रद्धेय श्रीभाईजीका इन दिव्य युगलके किसी विशिष्ट कार्यको सम्पन्न करनेके लिये इस धर्मभूमि भारतपर आविर्भाव हुआ था। श्रीयुगल-चरण-कमलके रस-लुब्ध भ्रमर श्रीभाईजीका जिस नित्य धामसे शुभागमन हुआ था, कार्यकी सिद्धिके उपरान्त श्रीप्रिया-प्रियतमने उनको नित्य धामकी नित्य लीलामें पुनः बुला लिया।

परम भागवत श्रीभाईजीको जिन्होंने निटकसे देखा है, उनके कतिपय विचार इस लघु पुस्तिकामें संकलित हैं। संकलनका प्रयोजन मात्र इतना ही है— प्रेममूर्ति श्रीभाईके लोकोत्तर व्यक्तित्व एवं उनके 'महान कार्य'की एक झलक हम सभीको मिल सके। यह संकलन सभीके लिये प्रेरणादायी हो, यही मेरी पुनीत भावना है।

बालकृष्णदास

वेणु विनोद कुञ्ज
श्रीवृन्दावन धाम [पूज्य श्रीबालकृष्णदासजी महाराज]

निधि निर्देश



रस-सिद्ध-संत
पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

वे ही शतदल-चरण हमारे
हृदय-पटलपर रहें जड़े !

जिन चरणोंकी मङ्गलकारी कृपा अहैतुकके द्वारा,
राधा-माधव-लीलाकी शुभ हुई प्रवाहित रस-धारा ।
पीकर जिसे, नहाकर जिसमें, केवल दर्शन कर जिसका,
झूम रहा है, झूमेगा युग-युगतक श्री-परिकर सारा ॥
जिन चरणोंके नख-चन्द्रोंसे तमका पट जा दूर पड़ा,
जन्म-जन्मसे मोह-जाल बन नयनोंपर जो था जकड़ा ।
खुले आज,कुछ कल उन्मीलित;कुछ उसके भी अगले दिन,
लोचन होंगे, झलक उठेगा, राधारानीका मुखड़ा ॥
जिन चरणोंके स्नेह-सिन्धुके भीतर रह, उसमें पलकर,
अनायास मूँगा-मोती बन गये रेत-चूना-पत्थर ।
इन प्रवाल-मुक्ताओंको उस मञ्जूषामें वास मिला,
रत्न जड़े जाते जिसमेंसे ले राधाके पायलपर ॥
जिन चरणोंके नीचे पनपे, हुए बड़े हम, हुए खड़े,
उन चरणोंकी ही छायामें रज-राशीमें रहें पड़े ।
जिन चरणोंने हम दीनोंको राधाका दासत्व दिया,
वे ही शतदल-चरण हमारे हृदय-पटलपर रहें जड़े ॥

रस-सिद्ध-संत श्रीपोद्दारजी

[श्रीराधेश्यामजी बंका]

प्रत्याहृत्य मुनिः क्षणं विषयतो यस्मिन् मनो धित्सते
बालासौ विषयेषु धित्सति ततः प्रत्याहरन्ती मनः ।
यस्य स्फूर्तिलवाय हन्त हृदये योगी समुत्कण्ठते
मुग्धेयं किल पश्य तस्य हृदयान्निष्क्रान्तिमाकाङ्क्षति ।।

(विदग्धमाधव)

'विदग्धमाधव' नाटकमें श्रीलरूपगोस्वामी प्रभुपादने भगवती श्रीराधाकी विवशताभरी विचित्र स्थितिका वर्णन करते हुए लिखा है—मुनिगण अपने मनको विषयोंसे खींचकर जिन श्रीकृष्णचन्द्रमें क्षणभरके लिये लगानेकी इच्छा करते हैं, उन्हीं श्रीकृष्णमें लगे हुए मनको वहाँसे हटाकर श्रीराधा विषयोंमें लगाना चाहती हैं। ओह, हृदयमें जिन श्रीकृष्णकी लवमात्र स्फूर्तिके लिये योगी उत्कण्ठित होते हैं, यत्न करते हैं, फिर भी जिनकी स्फूर्ति नहीं होती, उन्हींको हृदयसे हटानेके लिये श्रीराधा यत्न करती हैं, पर हटा नहीं पातीं।

उपरोक्त पंक्तियोंमें जिस प्रकारकी दिव्य एवं विलक्षण विवशताका चित्रण है, कुछ-कुछ इसी प्रकारकी विशिष्ट विवशताकी झलक स्वनामधन्य सर्वमान्य रस-सिद्ध-संत नित्य-लीला-लीन श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके जीवनमें भी देखनेको मिलती है। श्रीपोद्दारजीके द्वारा अनेक लोकोपकारी कार्य आजीवन सम्पन्न होते रहे हैं, किन्तु जीवनके अन्तिम वर्षोंमें उनकी स्थिति कुछ और ही हो गयी थी। लोकहितकारी कार्योंको करते-करते वे कब भाव-समाधिस्थ हो जायेंगे, यह सर्वथा अनिश्चित रहता था। श्रीपोद्दारजी चाहते थे कि मेरी वृत्तियाँ प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवके लीला-सिन्धुमें विलीन न हों, जिससे 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादनका अथवा सार्वजनिक संस्थाओंकी सँभालका अथवा आर्त-जनोंकी सहायताका अथवा साधु-संतोंकी सेवाका कार्य मेरे द्वारा हो सके, परंतु यह उनके वसकी बात नहीं रह गयी थी। कभी-कभी स्वयंका स्वयंसे संघर्ष होता था कि भाव-समाधिकी स्थितिमें अवस्थिति न हो, परंतु उन्हें अपने प्रयासमें प्रायः सफलता कम ही मिल पाती थी।

लोकोत्तर विवशता—

नगरके एक रुग्ण व्यक्तिको देखकर श्रीपोद्दारजी कारसे वापस आ रहे हैं, पर कारमें ही वृत्तिने शारीरिक

धरातल छोड़ दिया और वे समाधिस्थ हो गये। गीतावाटिकामें श्रद्धालु भक्तोंके सामने श्रीपोद्दारजी प्रवचन दे रहे हैं; कमरेके एकान्तसे निकल करके समुदायके मध्य बैठे हुए इसलिये बोल रहे हैं कि वृत्ति जागतिक धरातलपर टिकी रहे, पर प्रवचन देते-देते श्रीपोद्दारजी समाधिस्थ हो गये और श्रोतासमूह निश्चेष्ट-निस्स्पन्द श्रीपोद्दारजीको एकटक निहार रहा है। श्रीपोद्दारजी शौचालयसे आकर मिट्टीसे हाथ धो रहे हैं, पर धोते-धोते ही शरीरकी विस्मृति हो गयी और वृत्तियाँ लीला-राज्यमें विहरण करने लग गयीं। श्रीपोद्दारजी छतपर टहल रहे हैं, पर टहलते-टहलते मूर्तिवत् खड़े हो गये और निकटवर्ती जनोंको उनके निश्चेष्ट-निस्स्पन्द शरीरकी सँभालके लिये तत्पर हो जाना पड़ा। श्रीपोद्दारजी बैठे-बैठे लेखोंका संशोधन कर रहे हैं कि लेखनी अँगुलियोंसे छूटकर नीचे गिर पड़ती है और उनकी वृत्तियाँ पहुँच जाती हैं दिव्य लीला-राज्यमें।

एक बार कमरेमें बैठे हुए श्रीपोद्दारजी 'कल्याण'के लिये लेखोंका सम्पादन कर रहे थे। उसी समय उनकी जीवन-सहधर्मिणी किसी कार्यसे कमरेमें आयीं। श्रीपोद्दारजीने उनसे जल पिलानेके लिये कहा। जब वे जल लेकर आयीं, तब उन्होंने देखा कि ये तो समाधिस्थ हैं। उन्होंने जलका पात्र एक

किनारे रख दिया और वे घंटों श्रीपोद्दारजीके पास बैठी रहीं। वे बैठी हुई धीरे-धीरे पंखा झलने लगीं, जिससे उनके शरीरपर कोई मच्छर या मक्खी न बैठे।

एक बार श्रीपोद्दारजी छतपर अकेले बैठे थे। वहीं वे भाव-समाधिमें डूब गये। पासमें कोई नहीं था, था पूर्ण एकान्त। तभी बिल्लीका एक छोटा बच्चा आ गया। उस मार्जार-शावकके लिये पाषाणवत् स्थिर बैठे हुए श्रीपोद्दारजी तो एक प्रतिमा मात्र थे। अपनी शैशवोचित चञ्चलताके वशीभूत होकर वह शावक कूदकर उनकी गोदीमें चढ़ गया। वह शावक कभी कूदकर गोदसे नीचे आये, कभी कूदकर गोदमें चढ़ जाये और कभी उनकी परिक्रमा लगाये। इधर बाहर चल रहा था शावकका मनोरञ्जन-विलास और उधर भीतर चल रहा था युगलका लीला-विहार। श्रीपोद्दारजी लीला-विहारमें इतने निमग्न थे कि उन्हें शावकके विलासका और शावकके स्पर्शका भान नहीं। भाव-समाधिकी दशामें वृत्तियाँ निमग्न रहती थीं श्रीराधामाधवकी ललित लीलाओंके सरसीले सिन्धुमें। अपनी अनिर्वचनीय और अचिन्त्य स्थितिकी ओर संकेत करते हुए श्रीपोद्दारजीने कहा है—

अन्तरमें हो रहा खेल अति मधुर विलक्षण।
बाहर कैसे दीखे वह निश्शब्द अलक्षण॥

कौन बताये? किसे? वहाँके कैसे अनुभव ।
आ न सके पल एक छोड़कर वह रस नित नव ॥
बाहर आते समय रोक देती वह लीला ।
भीतर ही है रमा रही वह चारु सुशीला ॥
उस लीलाका त्याग बड़ा ही कठिन, असम्भव ।
इसीलिये बन रहा नहीं बाहर कुछ सम्भव ॥
चलती लीला ललित अपरिमित नित नव नूतन ।
कुसुम-सरोवर ही क्यों, अगणित सर-निकुञ्ज-वन ॥
मधुर मनोहर सुधामयी लीला नित होती ।
जगी उसीमें वृत्ति, बाह्य जगमें वह सोती ॥
मन-इन्द्रिय, सब अङ्ग, बुद्धि उसमें ही तन्मय ।
हुए इसीसे बाह्य बुद्धिके कार्य सभी लय ॥

(पद-रत्नाकर/पद-१०८८)

★ ★ ★ ★

भीतर खुले द्वार रस-गृहके, बाहर लगे कठोर कपाट ।
बाहर निर्जनता नीरवता, भीतर लगी रूपकी हाट ॥

(पद-रत्नाकर/पद-५०५)

श्रीपोद्दारजीके हृदय-निकुञ्जमें रूपकी हाट लगी है और उस निभृत निकुञ्जके भीतर लीला-परायण श्रीश्यामा - श्यामकी चिन्मयी छवि-छटाके दर्शनमें

लवलीन उनकी दशा यह थी कि

पता नहीं कुछ रात-दिवसका, पता नहीं कब संध्या-भोर।
जाग्रत्-स्वप्न दिखायी देता, श्याम सदा मेरा चित चोर॥
(पद-रत्नाकर/पद-४८८)

सम्मान्य श्रीविश्वनाथदास उत्तर प्रदेशके राज्यपाल रह चुके हैं तथा उड़ीसाके प्रसिद्ध राजनैतिक नेता थे। श्रीपोद्दारजीके समर्थ सहयोगसे वैदिक ज्ञानके प्रसारके लिये उन्होंने 'भारतीय चतुर्धाम वेद भवन न्यास'की स्थापना की थी। अपने निवृत्तिप्रिय अन्तर्मनकी स्थितिपर प्रकाश डालते हुए श्रीपोद्दारजीने उनको ५ मई १९६७ को एक पत्र लिखा था। उसका एक अंश इस प्रकार है—"अकस्मात् ऐसा हो जाता है कि इन्द्रियोंकी, मनकी सारी क्रियाएँ बन्द हो जाती हैं। जगतका सर्वथा लोप हो जाता है, केवल प्राण चलते रहते हैं। शरीर जिस अवस्थामें, इस प्रकारकी स्थिति होनेके आरम्भमें था, वैसे ही बैठा या पड़ा रहता है। आँखें खुली हों तो भी दिखता नहीं, क्यों कि कोई देखनेवाला ही नहीं रहता। इसे समाधि कहिये या और कुछ। पहले तो किसी समय ऐसी स्थितिकी मैं चाह करता था, उसकेलिये प्रयास करता था, अब कोई प्रयत्न न करनेपर भी, वरन्

कभी-कभी तो वृत्तियाँ बलात्कारसे संसारमें लगानेकी चेष्टा करनेपर भी अकस्मात् ऐसा हो जाता है और यह स्थिति कुछ मिनटोंसे लेकर १५, २० घंटोंतक भी रह जाती है। उस समय शरीर - मन - बुद्धि सर्वथा अक्रिय रहते हैं। पहले यह स्थिति कई दिनों बाद हुआ करती थी, अब तो बहुत जल्दी-जल्दी हो जाती है। इससे बहुत सँभलकर रहना पड़ता है।"

यह कैसी अद्भुत बात है कि श्रीपोद्दारजीकी वृत्तियाँ न चाहते हुए भी बलात् पहुँच जाती थीं प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधवके लीला-राज्यमें। हम लोग जगतके धरातलसे ऊपर उठना चाहते हैं, परंतु चाह करके भी उठ नहीं पाते और वे जगतके धरातलपर रहना चाहते हैं, पर चाह करके भी रह नहीं पाते।

दृष्टिकी अभेदता—

इतना ही नहीं, श्रीपोद्दारजीकी दृष्टि इतनी अधिक बदल गयी थी कि परस्पर विरोधी परिस्थितियोंमें कोई भेद ही दिखलायी नहीं देता था। गोरक्षा-आन्दोलनका एक प्रसंग इस तथ्यकी पूर्ण पुष्टि करता है। भारतमें गोवध बन्द करानेके लिये सन् १९६७ के नवम्बर मासमें समाजके अग्रगण्य मनीषियोंने गोहत्या - विरोधी आन्दोलन

आरम्भ कर दिया। आन्दोलनके प्रमुख संचालकोंकी एक समिति थी। उस समितिके एक सदस्य श्रीपोद्दारजी भी थे। आन्दोलनकी अर्थ-व्यवस्थाका भार श्रीपोद्दारजीने अपने ऊपर ले ही रखा था, इसके साथ ही 'कल्याण' पत्रिकाके माध्यमसे आन्दोलनके समर्थनमें जनमतको तैयार करनेमें श्रीपोद्दारजीकी क्रियाशीलता बड़ी महत्त्वपूर्ण रही। आन्दोलनके आरम्भ होते ही सत्याग्रहियोंसे जेल भरने लगे। गोरक्षाकी माँगको बल देनेके लिये जगन्नाथपुरीके पूज्य श्रीशंकराचार्यजी तथा प्रयागके पूज्य श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजीने भी अनशन आरम्भ कर दिया।

सरकारकी धारणा थी कि आन्दोलन कुछ दिनमें स्वतः ही ठण्डा पड़ जायेगा, पर वह दिन-प्रति-दिन व्यापक एवं तीव्र होता गया। तीन सप्ताहके बीतनेपर भी जब आन्दोलनकी प्रबलतामें कमी नहीं आयी तो केन्द्रीय सरकारने साम-दाम-दण्ड-भेदसे आन्दोलनको दबा देनेका निश्चय कर लिया। जब श्रीपोद्दारजीने देखा कि सत्य और अहिंसाकी अनुवर्तिनी सरकार ही असत्यके प्रचारद्वारा गो-हिंसाका पक्ष ले रही है तो इससे उन्हें अपार कष्ट हुआ, बड़ी खिन्नता हुई। उन्होंने मध्याह्नसे लेकर रात्रिके दस बजेतक न जाने कितने नेताओंको

पत्र लिखे और न जाने कितने समाचारपत्रोंके पास वक्तव्य भेजे। गायोंके हितके लिये आकुलता, सत्य तथ्योंकी हत्याको देखकर क्षुब्धता, शासकोंकी हिन्दू-विरोधी नीतियों-रीतियोंको देखकर खिन्नता, आन्दोलनके भविष्यके बारेमें व्यग्रता, इस प्रकारकी कई बातोंसे क्लान्त और अशान्त श्रीपोद्दारजीका सारा दिन अत्यधिक सचिन्ततामें व्यतीत हुआ।

रातको दस बजेके बाद जब सब पत्र और सारे वक्तव्य देशके भिन्न-भिन्न भागोंमें भेज दिये गये, उस समय सबने देखा कि श्रीपोद्दारजी भाव-समाधिमें लीन हैं। आसनपर उनका हलचल-रहित शरीर सर्वथा स्थिर है। श्वास-प्रश्वासके अतिरिक्त न कोई कम्पन है, न कोई स्पन्दन। यह भाव-समाधि भी क्षणिक नहीं, दीर्घ-काल-व्यापी। मनकी सम्पूर्ण क्षुब्धता-व्यग्रतासे तुरंत अतीत होकर समाधिस्थ हो जाना वस्तुतः परम विस्मयकारी है। सारे दिन अत्यधिक सक्रियता, घोर सचिन्तता, नितान्त आकुलता थी और अब थी पूर्ण निष्क्रियता, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्थिरता। उस सक्रियता-सचिन्तता-आकुलतासे असंपृक्त होनेमें उन्हें न कोई आयास हुआ और चरमान्तमुखताकी इस लोकोत्तर स्थितिपर आरूढ़ होनेमें उनको न कुछ समय लगा। घोर प्रवृत्तिके

बाद तुरंत चरम निवृत्तिवाली यह स्थिति हमारे लिये भले सर्वथा असम्भव हो, किन्तु उनके लिये सर्वथा सहज थी। इसका एक मात्र हेतु था महान क्रान्ति और अखण्ड शान्तिके प्रति उनकी सम-दृष्टिका होना। क्रान्ति और शान्तिके प्रति उनकी अभेद दृष्टि इसीलिये थी कि ये दोनों विरोधी परिस्थितियाँ एक ही प्रभुका लीला-विलास है। श्रीपोद्दारजीकी आन्तरिक स्वीकृति थी और यह स्वीकृति उनकी प्रकृतिमें पूर्णरूपेण उतर आयी थी कि यह सारा द्वन्द्वात्मक संसार और संसारके समस्त द्वन्द्व मेरे प्रभुकी लीलाका विस्तार है। श्रीपोद्दारजीकी आँखें सर्वथा बदल गयी थीं; उनके मनमें, उनकी मान्यतामें सांसारिकता रह ही नहीं गयी थी। श्रीपोद्दारजीने स्वयं लिखा है—

अति आश्चर्य, बदल दी तुमने मेरी दृग-पुतली, प्राणेश !
दीख रहे अब मुझको तुम सर्वत्र सभीमें, हे हृदयेश !
(पद-रत्नाकर/पद ११०२)

★ ★ ★

जगमें सुख-दुख, लाभ-हानि, चिर-
जीवन-मृत्यु, मान-अपमान।
सभी तुम्हारे खेल, सभीमें भरे तुम्हीं मेरे भगवान॥

इससे मिलता मुझे सर्वदा सबमें सुखद तुम्हारा स्पर्श ।
अतः नहीं हो पाते मनमें कभी शोच, उद्वेग, अमर्ष ॥
(पद-रत्नाकर/पद-१२०८)

उपलब्धिके चार सोपान—

सभी परिस्थितियोंमें अपने जीवनाराध्यके कृपा-विलासका सतत दर्शन करनेवाले और उनके रूपसिन्धु - लीलासिन्धु - प्रेमसिन्धुमें नित्य निमज्जन करनेवाले परम सिद्ध एवं परम रसिक संत श्रीपोद्दारजीका आविर्भाव सं० १९४९ वि० आश्विन कृ० १२ शनिवार (१७-९-१८९२) को हुआ था और उन्होंने सं० २०२७ वि० चैत्र कृ० १० सोमवार (२२-३-१९७१) को अपनी इहलीलाका संवरण कर लिया। वे इस पृथ्वीतलपर हमारे साथ लगभग ७९ वर्ष रहे। उनके जीवन-कालको कार्य-कलाप एवं उपलब्धिकी दृष्टिसे मुख्यतः चार भागोंमें विभाजित किया जा सकता है। (१) देश-भक्ति एवं समाज-सेवा प्रधान प्रथम भाग सन् १८९२ से १९१६ तक। बंगालके शिमलापाल ग्राममें नजरबन्दी सन् १९१६ में हुई थी। (२) साधना-परायणता एवं सफलता-प्राप्ति प्रधान द्वितीय भाग सन् १९१६ से १९२७ तक। भगवान् विष्णुके दर्शन सन् १९२७ में हुए थे। (३) साहित्य-प्रकाशन एवं भक्ति-प्रचार

प्रधान तृतीय भाग सन् १९२७ से १९५६ तक। तीर्थ-यात्रा-ट्रेन द्वारा तीन धामकी यात्रा सन् १९५६ में की गयी थी। (४) भाव-वितरण एवं भाव-निमज्जन प्रधान चतुर्थ भाग सन् १९५६ से १९७१ तक। नित्यलीलामें नित्य लीनताकी प्राप्ति सन् १९७१ में हुई थी।

जीवनकालका यह सर्वथा स्थूल विभाजन है। एक काल-भागमें एक भाव-धाराकी मुख्यता है, परंतु इसीके साथ-साथ समानान्तर-निम्नान्तर-अवान्तर रूपसे अन्य अनेक भाव-धाराओंका भी अस्तित्व है। जीवनके आरम्भिक कालभागमें देशभक्ति-समाजसेवावाली प्रवृत्ति जीवनके अन्ततक किसी-न-किसी रूपमें रही है। भक्ति-भावनाकी परिपक्वावस्था है भाव-समाधि और इस भक्ति-भावनाका अस्तित्व बचपनमें ही दृष्टिगत होता है। साहित्य-लेखन एवं प्रकाशनके कार्यका आरम्भ युवावस्थामें ही हो गया है। अतः इस काल-विभाजनको सर्वथा स्थूल रूपमें ग्रहण करना चाहिये।

प्रथम चरण : राष्ट्र-प्रेम—

श्रीपोद्दारजीका जन्म आसाम प्रान्तके शिलांग नगरमें हुआ था। राजस्थानी अग्रवाल जातिके सौभाग्यशाली श्रीरिखीबाई तथा श्रीभीमराजजी

पोद्दारको उनके माता-पिता कहलानेका गौरव प्राप्त हुआ। वैष्णव परिवारमें जन्म होनेसे तथा भक्तिमती दादी रामकौरकी छत्र-छायामें पालन-पोषण होनेसे जीवनमें भक्ति-भावनाकी प्रतिष्ठा सहज ही हो गयी थी। बचपनमें कतिपय चमत्कारी प्रसंग भी घटित हुए। पूज्य श्रीबखन्नाथजी, श्रीसेठजी (पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका) जैसे श्रेष्ठ संतोंके सांनिध्यसे भक्ति-भावना अधिकाधिक परिपुष्ट हुई। स्कूली शिक्षाका अभाव रहा, किन्तु अपने अध्यवसायसे उन्होंने अति विपुल विद्यार्जन कर लिया। यौवनकी देहलीपर पैर रखते ही दादी रामकौरकी इच्छासे गृहस्थाश्रम अंगीकार करना पड़ा। देश-भक्तिसे हृदय आलोड़ित था ही, अतः देशके गणमान्य नेताओं, जैसे श्रीअरविन्द घोष, विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, श्रीचित्तरंजन दास, श्रीगोपालकृष्ण गोखले, महामना पं० मदनमोहन मालवीय, राजर्षि पुरुषोत्तमदासजी टण्डन आदिके निकट सम्पर्कमें आनेका अवसर मिला। स्वदेशी आन्दोलनमें शुद्ध खादीके प्रयोगका व्रत ले लिया। देशकी परतन्त्रताको दूर फेंकनेकी भावना जब जोर पकड़ने लगी तो उन्होंने क्रान्तिकारी गतिविधियोंमें भाग लिया। इससे कुपित होकर अंगरेजी सरकारने सन् १९१६ में पहले कलकत्तेके अलीपुर जेलमें बन्द रखा और फिर इसके बाद

२१ मासके लिये उनको बंगालके शिमलापाल नामक ग्राममें नजरबंद कर दिया।

द्वितीय चरण : साधनामय जीवन—

शिमलापालके एकान्त जीवनमें साधनापूर्ण जीवनका आरम्भ हुआ। पूज्य श्रीसेठजीका पूर्व-सम्पर्क बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। भगवान विष्णुका ध्यान, भगवन्नामका जप और भक्ति-ग्रन्थोंका स्वाध्याय ही इनकी साधनाका स्वरूप था। शिमलापालमें श्रीपोद्दारजीको देवर्षि नारदके भक्ति-सूत्रोंसे साधनामें बड़ी सहायता मिली। उन्होंने 'नारद-भक्ति-सूत्र'की व्याख्या भी लिखी, जो भविष्यमें 'प्रेम-दर्शन'के नामसे गीताप्रेससे प्रकाशित हुई। नजरबन्दीकी समाप्तिके बाद बम्बई-निवासकी अवधिमें अध्यात्म-साधना एवं समाज-सेवा, दोनों ही महत्त्वपूर्ण रहे। लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, महात्मा गाँधी, श्रीजमुनालालजी बजाज, संगीताचार्य श्रीविष्णु दिगम्बरजी आदिसे बड़ी घनिष्ठता स्थापित हो गयी। भगवन्नाम-निष्ठाके फलस्वरूप भगवान श्रीरामके दर्शन हुए। साकारोपासनाके साथ-साथ निराकार-साधनाके क्षेत्रमें भी महदुपलब्धि हुई। जगत स्वप्नकी सृष्टिके समान प्रतीत होता था और बोधस्वरूप आनन्दघनमें प्रत्यक्षवत् स्थिति निरन्तर बनी रहती थी। इन दिनों

साकार-साधना और निराकार-साधनामें श्रीसेठजीके सत्संगसे बड़ी सहायता मिली। श्रीसेठजीके प्रति जो आत्मीयतापूर्ण सम्बन्ध था, वह श्रद्धेय भावमें परिणत हो गया। श्रीसेठजीकी प्रेरणासे बम्बईमें 'सत्संग-भवन'की स्थापना हुई। वहींसे सन् १६२६ में श्रीपोद्दारजीने सुप्रसिद्ध मासिक-पत्र 'कल्याण'का सम्पादन और प्रकाशन आरम्भ कर दिया। पारसी प्रेतसे साक्षात् वार्तालाप होनेपर उसके उद्धारके लिये गयामें श्राद्ध करवाया, फिर अनेक दिव्य लोकोंसे सम्पर्क स्थापित हुआ। बम्बई-निवासकी अवधिमें भी अनेक चमत्कार घटित हुए। गंगातटपर एकान्त-वासकी आकांक्षा जाग उठी, अतः 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादन और संचालनकी दृष्टिसे सन् १६२७ में 'कल्याण'का बम्बईसे गीताप्रेस, गोरखपुर स्थानान्तरण हो गया, किन्तु ईश्वरीय योजनाके अनुसार श्रीपोद्दारजी सम्पादकीय दायित्वसे मुक्त नहीं हो सके। भगवद्दर्शनकी प्रबलोत्कण्ठा होनेसे सन् १६२७ में भगवान विष्णुके दर्शन हुए।

तृतीय चरण : लोकाराधन धारा—

भगवान विष्णुने दर्शन देकर निर्देश दिया कि लोक-हितके लिये भगवद्भक्ति एवं भगवन्नामका प्रचार करना चाहिये। भगवदीय निर्देशने बुद्धिके

निर्णयको सुदृढ़ बना दिया तथा मनका उत्साह अनन्त गुना हो गया। इसके उपरान्त श्रीपोद्दारजीने वही किया, जो अपने प्राचीन महान आचार्योंद्वारा होता आया है। ज्ञानोपलब्धि अथवा भगवत्साक्षात्कारके उपरान्त वे आचार-निष्ठ आचार्य स्थान-स्थानपर परिभ्रमण करके उपलब्ध सत्यका प्रचार किया करते थे। वही प्रचार-कार्य अब श्रीपोद्दारजीके द्वारा हुआ; अवश्य ही, युगधर्मके अनुसार प्रचार-पद्धतिमें अन्तर था। प्राचीन-कालमें दैनिक पत्र अथवा मासिक पत्रिकाके सम्पादन और प्रकाशनकी कोई परिपाटी नहीं थी। यहाँ-वहाँ कुछ एक ग्रन्थोंका लेखन हाथस होता था, परंतु बड़ी संख्यामें उनके मुद्रणकी कोई कल्पना नहीं थी। तब रेल-कार-वायुयान-डाक-तार-फोन-प्रेस-मशीन-बिजली आदि नहीं थे। प्राचीनकालमें आचार्यगण ग्रन्थ लिखते और अपने शिष्य-मण्डल सहित भ्रमण करते हुए स्थान-स्थानपर शास्त्रार्थ करते, उपदेश देते, शिष्य बनाते, मठ खोलते, मन्दिर बनवाते। इस प्रणालीसे उनका प्रचार-कार्य चलता। आधुनिक युगमें वैज्ञानिक प्रगतिने जो उपयोगी साधन मानव समाजको प्रदान किये हैं, उसीके कारण अब प्रचार-पद्धतिमें अन्तर आ गया। श्रीपोद्दारजीने भी स्थान-स्थानपर भ्रमण किया, पर इसीके साथ-साथ नवीन साधनोंका भी उपयोग करते हुए उन्होंने वही किया, जो प्राचीन

आचार्यगण अपने तत्कालीन युगमें करते आये हैं। परम्परा वही है; हाँ, परिवेष नवीन है। श्रीपोद्दारजीकी प्रचार-प्रणाली युगानुरूप थी। वैज्ञानिक प्रगतिके फलस्वरूप समाजकी परिस्थितिमें जो परिवर्तन आया, उन परिवर्तित परिस्थितियोंकी माँगके अनुसार कार्य-प्रणालीमें परिवर्तन अपरिहार्य था।

हिन्दी भाषामें 'कल्याण' और अँगरेजी भाषामें 'कल्याण-कल्पतरु' मासिक पत्रोंका प्रकाशन, श्रीराधा-माधव सम्बन्धी विपुल साहित्यके साथ-साथ गद्य-पद्यात्मक प्रभूत आध्यात्मिक-धार्मिक साहित्यका सृजन, रासपञ्चाध्यायी-रामचरितमानस-विनयपत्रिका जैसे महत्त्वपूर्ण धर्म-काव्योंकी टीकाका लेखन, पौराणिक और औपनिषदिक साहित्यके अनुवादको प्रश्रय तथा प्रोत्साहन, स्वयंके निर्देशनमें देवी-देवताओंके चित्रोंका चित्रकारों द्वारा चित्रांकन, इस प्रकार श्रीपोद्दारजीके भगीरथ प्रयाससे भक्ति-भावनाकी भागीरथी प्रवाहित हो उठी।

श्रीपोद्दारजीके जीवनमें वृन्दावनी रसोपासनाकी प्रधानता थी। प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवके ऐकान्तिक उपासक होकर भी भगवान श्रीगणेश, भगवान श्रीसूर्यदेव, भगवान श्रीपार्वती-शंकर, भगवती श्रीदुर्गा, भगवान श्रीसीताराम, भगवान

श्रीलक्ष्मीनारायण आदिके प्रति उनकी परम भक्ति थी। श्रीपोद्दारजीके व्यक्तित्वमें हिन्दू जीवनका आदर्श विद्यमान था। निष्ठावान हिन्दू होनेके साथ-साथ विश्वकी सम्पूर्ण आराधना-पद्धतियोंको वे बड़े आदरकी आँखोंसे देखते थे। वे 'कल्याण' पत्रिकाके पृष्ठोंपर सभी आराधना-पद्धतियोंकी गरिमाको सम्मानपूर्वक स्थान दिया करते थे। श्रीपोद्दारजीके द्वारा 'कल्याण' पत्रिकाका सम्पादन ऐसा सुन्दर हुआ कि आजकल विद्वद्वर्ग 'कल्याण'के विशेषांकोंको प्रमाणके रूपमें प्रस्तुत करने लग गया है और सामग्री-समृद्धि-सुसज्जाके आधारपर उन विशेषांकोंको विश्वकोष-सा कहा जाने लगा है।

गीताप्रेससे विविध और विपुल सत्साहित्यके प्रकाशनके साथ-साथ हरिनाम-संकीर्तनका प्रचार, धार्मिक समारोहोंका आयोजन, संतोंका दर्शन विद्वानोंसे सम्पर्क, तीर्थोंकी यात्रा, स्थान-स्थानपर भ्रमण, हस्तलिखित ग्रन्थों एवं मुद्रित पुस्तकोंका संग्रह, गायोंके संरक्षण हेतु उद्योग, देव-मन्दिरोंके नव-निर्माण तथा जीर्णोद्धारमें सहायता, श्रीराम-जन्म-भूमि अयोध्या एवं श्रीकृष्ण-जन्म-भूमि मथुराके उद्धारमें सहयोग, प्राचीन परम्पराओंकी श्रेष्ठताओंका विख्यापन, बातचीत द्वारा जीवनको भक्तिमय बनानेकी प्रेरणा, कलह-ग्रस्त परिवारोंके प्रति

हितैषिता, समाज-जीवनके विवादास्पद विषयोंपर समयोचित सम्मति, समाज-सेवी कार्यकर्ताओंके प्रति उदारता, सामाजिक-धार्मिक संस्थाओंको परामर्श, दैनिक सत्संग, साधकोंको पथ-निर्देश आदि-आदि श्रीपोद्दारजीकी अतुल-असित कार्य-तत्परताके उद्घोषक हैं। यह कार्य-तत्परता ऐसी थी मानो लक्ष्य-सिद्धिके लिये वे स्वयंकी सतत आहुति दे रहे थे। आत्माहुतिके फलस्वरूप ऐसे वातावरणकी सृष्टि हुई कि भारत भूमिपर भगवद्विश्वास, भगवद्भक्ति, भगवन्नामकी उन्नत पताका फहर उठी। उस उन्नत पताकाकी भव्य फहरान ऐसी व्यापक और गौरवास्पद थी कि भारतकी सीमाके बाहर विदेशमें बसनेवाले हिन्दू भी धार्मिक साहित्य और आध्यात्मिक प्रेरणाकी प्राप्तिके लिये श्रीपोद्दारजीकी ओर आशा भरी दृष्टिसे देखने लग गये।

भक्ति-प्रचार एवं धर्म-संस्थापनका कार्य करते समय भी आर्तोंकी आर्ति श्रीपोद्दारजीको अपनी ओर आकृष्ट कर ही लेती थी। आग-अकाल-बाढ़-भूकम्प-महामारी आदि विपत्तिसे पीड़ित बन्धुओंको श्रीपोद्दारजीकी ओरसे खुली सहायता मिलती थी। अनाथ माताएँ, विधवा बहिनें, निर्धन विद्यार्थी, निरुपाय कैदी, कुष्ठ रोगी श्रीपोद्दारजीके विशेष कृपा-पात्र रहे हैं। मूक-बधिर-अंध-पंगुके प्रति वे सदा दयार्द्र रहे। विद्यालय एवं औषधालयकी अनेक

कठिनाइयोंको दूर करनेके लिये उनका प्रयत्न थकता नहीं था। संतों-साधकों-विद्वानोंका जीवन प्रायः अभाव-ग्रस्त ही रहा करता है, उनके भी योग-क्षेमकी चिन्ता श्रीपोद्दारजीको रहा करती थी और चिन्ता दूर हो जाती थी वय-प्राप्त कन्याओंके माता-पिताओंकी उनसे अर्थपूर्ण अव्यर्थ आश्वासन पाकर। भारत-विभाजनके समय धर्मके नामपर विधर्मियोंद्वारा हिन्दू भाई-बहिनोंपर जो भयंकर संकट आया, हत्या और लूट-पाटका जो राक्षसी नृत्य हुआ, शील और धर्मका जो बलादपहरण हुआ, जान-मालकी जो भीषण हानि हुई, उससे श्रीपोद्दारजीका हिन्दू-हृदय कराह उठा। हृदयकी वह असह्य व्यथा व्यक्त हो उठी 'कल्याण'के एक अतिरिक्तांकके रूपमें। यह अतिरिक्तांक 'मालवीय स्मृति-अंक'के नामसे छपा था। सरकारने इसे तुरंत जब्त कर लिया और आजतक यह प्रतिबंध-मुक्त नहीं हुआ है।

व्यक्तित्वकी प्रशस्ति—

भगवानके अवतरणका हेतु होता है साधु-परित्राण और धर्म-संस्थापन। ये कार्य भगवानके निजी विशेष कार्य हैं। इसी प्रकारका कार्य श्रीपोद्दारजीके द्वारा हुआ। एक बार भावाप्लाविता-

वस्थामें श्रीपोद्दारजी द्वारा इस तथ्यकी सत्यता अनायास अभिव्यक्त हो उठी कि प्रभुकी मेरे द्वारा 'कुछ विशेष कार्य' करवानेकी योजना थी। आर्ति-निवारण, भक्ति-प्रचार, साधु-सेवा, गो-संवर्धन, शास्त्र-संरक्षण, साहित्य-प्रकाशन आदि-आदि कार्य-कलापोंके रूपमें उस विशेष कार्यके सम्पन्न होनेकी झलक मिलती है। श्रीपोद्दारजीको अपने प्रयासमें अभूतपूर्व सफलता मिली। उनके भक्ति-प्रचार एवं धर्म-संस्थापनके कार्यको देखकर श्रीगुरुजी (राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघके दिवंगत सरसंघचालक पूज्य श्रीमाधवराव सदाशिवजी गोलवलकर) ने एक बार कहा था कि अनास्था और अनैतिकतासे आच्छादित आजके अन्धकारपूर्ण युगमें आस्तिकता और सात्त्विकताकी प्रतिष्ठाके लिये जो कार्य श्रीपोद्दारजीने किया है, वह अद्वितीय है। सर्व साधारण लोगोंके मनमें धर्म-भावना जगानेके लिये, प्रभुके प्रति विश्वासको सुदृढ़ करनेके लिये, विभिन्न मत-मतान्तरोंमें सामञ्जस्यको स्थापित करनेके लिये और शील-सदाचारके प्रति निष्ठावान बनानेके लिये श्रीपोद्दारजी द्वारा किया गया कार्य अपने ढंगका अनूठा और अकेला है।

श्रीपोद्दारजीके नित्य सहचर एवं अनन्य परिकर पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी समर्पणकी साकार

प्रतिमा थे। श्रीगोस्वामीजीने अपनी सम्पूर्ण प्रतिभाको, सम्पूर्ण योग्यताको, सम्पूर्ण जीवनको श्रीपोद्दारजीके चरणोंपर अर्पित कर दिया था। श्रीगोस्वामीजीके निस्स्वार्थ उत्सर्गसे श्रीपोद्दारजीको धर्म-सेवा-कार्यमें बड़ा सहयोग मिला। श्रीपोद्दारजी एवं श्रीगोस्वामीजीके महान कार्यका अभिनन्दन करते हुए बंगालके अति प्रसिद्ध संत पूज्य श्रीसीतारामदास ओंकारनाथजी महाराजने लिखा है—"अनन्त करुणा-पारावार पुरुषोत्तम श्रीभगवान दो अलौकिक अनुपम यन्त्रोंको लेकर इस दारुण कलियुगमें सर्वत्र जो धर्म-प्रचार, श्रीनाम-प्रचार और शास्त्र-प्रचार कर रहे हैं, इस प्रकारके प्रचारकी बात मैंने किसी इतिहासमें, पुराणमें नहीं देखी; अथवा किसी धर्म-प्रचारकने इस प्रकार विश्वव्यापी धर्म-प्रचार किया हो -यह नहीं सुना।...... श्रीपोद्दार बाबाके शरीरके आश्रयसे हमारे प्रभुने जो अपूर्व शास्त्र-प्रचार एवं धर्म-प्रचारकी लीला की है, वह न कभी हुई है और न होगी। ऐसे संतके चरणोंमें मस्तक अपने आप नत हो जाता है।"

श्रीपोद्दारजीके एक अति निकटवर्ती संतने* और भी भाव-भरे उद्गार उनके प्रति व्यक्त

---

* आप हैं परम पूज्य श्रीराधा बाबा।

किये हैं— (१) धार्मिक ग्लानि और ह्रासको दूर करनेके लिये धर्म-प्रचारका जो कार्य आदिशंकराचार्य-रामानुजाचार्य जैसे आचार्योंद्वारा हुआ, (२) जन-जनके आचार - विचार - व्यवहारको नियन्त्रित - सुसंस्कृत करनेके लिये समाज - जीवन - सम्बन्धी प्रश्नोंपर व्यवस्था देनेका जो कार्य मनु - याज्ञवल्क्य जैसे स्मृतिकारों द्वारा हुआ, (३) हृदयकी कोमल भक्ति-भावनाओंके तरंगित हो उठनेपर भक्ति - काव्यकी रचनाका जो कार्य तुलसीदास-सूरदास जैसे भक्त-कवियोंद्वारा हुआ और (४) श्रीराधा-माधवके लीला-सिन्धुमें नित्य-निरन्तर निमग्न रहनेके आदर्शकी प्रतिष्ठाका जो कार्य मीराबाई - चैतन्यमहाप्रभु जैसे रसिक जनोंद्वारा हुआ, इन चारों कार्य-धाराओंके अद्भुत संगमका पावन दर्शन श्रीपोद्दारजीके विशाल व्यक्तित्वमें होता है।

अन्तरंग ऐकान्तिक भक्ति धारा—

साहित्य - प्रकाशन, भक्ति प्रचार और धर्म-संस्थापनके कार्य - कलापोंमें श्रीपोद्दारजीके बहिरंग जीवनकी झलक मिलती है, परंतु उनका अन्तरंग जीवन कुछ और ही था। उनके अन्तरंग जीवनका सम्बन्ध भगवान श्रीकृष्णकी ऐकान्तिक भक्तिसे है। भगवान विष्णुके दर्शनके उपरान्त श्रीपोद्दारजीके

मनमें श्रीकृष्ण-दर्शनकी इच्छा जाग उठी। उचित समयपर श्रीपोद्दारजीको अचिन्त्य रीतिसे आश्वासन मिला—अब तुमको श्रीकृष्ण-स्वरूपका अनुभव होने लगेगा।

पहले रथस्थ गीतावक्ता भगवान श्रीकृष्णके दर्शन हुए, फिर मुरलीधारी वृन्दावनविहारी श्रीकृष्णके, किन्तु भगवती श्रीराधाके नहीं। प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधवकी युगल-छविके दर्शनका सौभाग्य तो बादमें मिला। भगवान विष्णुके ध्यानके स्थानपर वृन्दावनविहारी श्रीकृष्णका ध्यान अपने आप होने लग गया। 'कल्याण'के 'श्रीकृष्णांक'का प्रकाशन सन् १६३१ में हुआ था, इसी समयसे यह उद्बुद्ध अन्तरंग धारा क्रमशः प्रबुद्ध और प्रपुष्ट होती चली गयी। अब केवल श्रीकृष्ण-ध्यान ही नहीं, वृन्दावनकी लीलाओंका भी दर्शन होने लग गया।

सन् १६३३ में 'शिवांक' और सन् १६३४ में 'शक्ति-अंक'का सम्पादन करते समय भगवान शिव तथा भगवती शक्तिका साक्षात्कार हुआ। वृन्दावनकी लीलाओंका दर्शन होता ही था, उसपर जो सतत चिन्तन एवं गहन मनन चला और इस चिन्तन-मननके फलस्वरूप रसोपासना सम्बन्धी जिन गूढ़ तथ्योंकी उपलब्धि हुई, ये गूढ़ तथ्य ही 'गोपी-प्रेम'

नामक पुस्तिकाके रूपमें गीताप्रेससे सन् १९३४ में प्रकाशित हुए। फिर सन् १९३५ में 'प्रेम-दर्शन'का प्रकाशन हुआ, जो 'नारद भक्ति-सूत्र'की व्याख्या है। यह व्याख्या शिमलापालके बन्दी-जीवनमें साधना करते समय लिखी गयी थी।

देवर्षि नारदका कृपा-प्रसाद—

'गोपी-प्रेम' एवं 'प्रेम-दर्शन'में प्रेम-पथके पथिकोंके लिये परमोपयोगी प्रेम-तत्त्व एवं प्रेम-मर्मका जैसा उद्घाटन हुआ है, उसने देवर्षि नारदके ध्यानको आकृष्ट कर लिया। योग्य पात्रपर कृपा करनी ही चाहिये, अतः सन् १९३६-३७ में देवर्षि नारदने अपना पावन दर्शन प्रदान करके श्रीपोद्दारजीको कृतार्थ किया। देवर्षि नारदके साथ महर्षि अंगिरा भी थे। देवर्षि नारदका यह शुभागमन उत्तरकाशीके एक अति प्राचीन प्रसंगकी स्मृति दिला रहा है। महर्षि श्रीवेदव्यासजीके 'ब्रह्मसूत्र' का भाष्य लिखा पूज्य श्रीआदिशंकराचार्यजीने। यह भाष्य इतना श्रेष्ठ था कि महर्षि श्रीवेदव्यासजी परम प्रसन्न हो गये। उत्तरकाशीमें श्रीआदिशंकराचार्यजी अपने शिष्योंको जब स्वरचित भाष्य पढ़ा रहे थे, उसी समय महर्षि श्रीवेदव्यासजीने प्रकट होकर श्रीआदिशंकराचार्यजीको परम आशीर्वाद दिया और

वैदिक धर्मके प्रचारकी प्रेरणा प्रदान की। इसी प्रकार प्रेम-तत्त्व एवं प्रेम-मर्मका अति श्रेष्ठ उद्घाटन करनेवाले श्रीपोद्दारजीपर देवर्षि नारद इतने प्रसन्न हो उठे कि उन्होंने स्वयं पधार करके पूर्ण आशीर्वाद प्रदान किया। देवर्षि नारदने यह भी सूचित किया कि 'दिव्य-संत-मंण्डल'में तुम्हारा अन्तर्निवेश हो गया है। देवर्षि नारदने प्रसन्न होकर जो प्रेमोपदेश तथा शुभाशीर्वाद दिया, यह कितना श्रेष्ठ था, इसका परिचय दे रही है वह महान सफलता, जो भावी जीवनमें प्राप्त हुई।

इसी वर्ष सन् १९३६-३७ में एक वर्षीय अखण्ड हरिनाम् संकीर्तन यज्ञका आरम्भ हुआ और इसी वर्ष पूज्य श्रीराधा बाबा (स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराज) का गीतावाटिकामें श्रीपोद्दारजीके पास सर्वप्रथम आगमन हुआ। युवक संन्यासी श्रीराधा बाबा तब कट्टर वेदान्ती थे। द्वारपर आये हुए संन्यासीको प्रणाम करना चाहिये, अतः श्रीपोद्दारजीने चरण-स्पर्श करते हुए बाबाको प्रणाम किया। स्पर्श करते ही उस स्पर्शका परिणाम यह था कि बाबाके कथनानुसार श्रीपोद्दार महाराजके उस क्षणिक स्पर्शसे मेरे हृदयमें व्रजभावका बीजारोपण हो गया। कट्टर वेदान्ती बाबाके मनमें

अद्वैत तत्त्वके प्रति बड़ा आग्रह था, वह सारा आग्रह एक क्षणमें कहाँ तिरोहित हो गया, यह कौन बताये? श्रीपोद्दारजीके इस अद्भुत सामर्थ्यके समक्ष अद्वैतवादी बाबा स्वतः और सहज विनत हो गये। देवर्षि नारद तो व्रज-गोपियोंको आदर्श मानते हैं। उन देवर्षिके उपदेशसे व्रजभावका ऐसा रंग श्रीपोद्दारजीपर चढ़ा कि उनके समीपमें आनेवाले भी उस रंगसे प्रभावित होने लग गये। देवर्षिका उपदेश श्रीपोद्दारजीके जीवनमें गहरे उतर गया था और इतने गहरे उतर गया था कि दूसरोंको भी गहराईमें उतार ले जानेकी क्षमता रखता था। ऐसा लगता है कि जिस प्रकार देवर्षि नारदने महर्षि श्रीवेदव्यासको महान प्रेरणा प्रदान करके उन्हें भगवान श्रीकृष्णकी गुणगरिमा-लीलामहिमाके गायनमें प्रवृत्त कर दिया, उसी प्रकार देवर्षि नारदने श्रीपोद्दारजीको महान उपदेश प्रदान करके उन्हें भगवान श्रीकृष्णकी गुणमाधुरी-लीलामाधुरीके आस्वादनमें प्रवृत्त कर दिया। लीला-गायनमें प्रवृत्त होनेपर महर्षि श्रीवेदव्यासके जीवनका मधुरतम फल है 'श्रीमद्भागवत महापुराण' और लीला-आस्वादनमें प्रवृत्त होनेपर श्रीपोद्दारजीके जीवनका श्रेष्ठतम नवनीत है 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' एवं 'पद-रत्नाकर'।

श्रीपोद्दारजीके जीवनमें दो धाराएँ स्पष्ट दिखलायी दे रही हैं। एक है बहिरंग और दूसरी अन्तरंग। साहित्य-प्रकाशन, भक्ति-प्रचार और धर्म-संस्थापनवाली लोकाराधन-धारा बहिरंग है और श्रीराधा-माधवके दिव्यरूप-दिव्यलीला-दिव्यसमर्पण-दिव्यसम्बन्ध-दिव्यप्रेमके भाव-सिन्धुमें निरन्तर निमज्जनवाली ऐकान्तिक भक्ति-धारा अन्तरंग है। प्रथम बहिरंग धाराका सम्बन्ध भगवान विष्णुके निर्देशसे है और द्वितीय अन्तरंग धाराका सम्बन्ध देवर्षि नारदके उपदेशसे है। सन् १९५६ में श्रीपोद्दारजीने अपने स्नेही जनोंके साथ ट्रेन द्वारा तीन धामकी यात्रा की। सन् १९५६ तक बहिरंग धाराका स्वर प्रबल रहा और अन्तरंग धाराका मधुर-मन्द-मन्थर प्रवाह प्रच्छन्न रूपसे जीवनमें बहता रहा। तीर्थ-यात्राके बाद बहिरंग धाराका स्वर क्रमशः क्षीण-क्षीणतर होता हुआ शिथिल पड़ता चला गया और श्रीपोद्दारजीके भावी जीवनपर अधिकाधिक अधिकार होता चला गया प्रच्छन्न रूपसे बहनेवाली मधुर धाराके माधुर्यकी मादकताका।

चतुर्थ चरण : रसावगाहन—

तीर्थ-यात्राके बाद इसी सन् १९५६ में प्रिया-

प्रियतम श्रीराधा-माधवकी ललित लीलाओंके माधुर्य-सिन्धुमें निमज्जन करनेके उद्देश्यसे यदि उधर श्रीराधा बाबाने काष्ठ मौनका व्रत लेकर अपने दोनों अधरोंको बन्द कर लिया तो इधर श्रीपोद्दारजी नितान्त एकान्तमें बैठे रहनेके लिये अपने कमरेके दोनों कपाटोंको बन्द रखने लग गये। उधर बाबाकी लीला-सिन्धुमें विलीनता बढ़ती चली जा रही थी तो इधर श्रीपोद्दारजीकी भाव-सिन्धुमें लवलीनता चढ़ती चली जा रही थी। श्रीपोद्दारजीके मनमें नितान्त एकान्तकी अभिलाषा इतनी तीव्र हुई कि वह तीव्रता उन्हें शीघ्र ही गोरखपुरसे रतनगढ़ ले गयी, परंतु श्रीसेठजीके अनुरोधके समक्ष श्रीपोद्दारजीको झुकना पड़ा और उन्हें लगभग १८ मास बाद पुनः गोरखपुर आना पड़ा। उन्होंने अनेक बार प्रयास किया कि 'कल्याण' और गीताप्रेसके दायित्वसे विमुक्ति मिल जाये, पर श्रीसेठजीके आग्रहभरे अनुरोधकी अवहेलना कर सकना उनके सौम्य स्वभावके द्वारा सम्भव था नहीं। श्रीसेठजीके मनमें महत्त्व था श्रीगीता-प्रचारका और समाजोत्थानका, परंतु प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवकी रूपमाधुर-लीलामाधुरी-प्रीतिमाधुरीने श्रीपोद्दारजीके तन-मन-जीवनको पूर्णतः अपने प्रभावमें ले लिया था। यह तो श्रीपोद्दारजीका

शील था कि अपनी रुचिके विपरीत उन्होंने पूज्य जनोंकी बातको ऊँचा रखा और वे जीवनके अन्ततक गीताप्रेस और 'कल्याण'के कार्यके उत्तरदायित्वको निभाते रहे। उनका मन तो रम रहा था प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवके भाव-सिन्धुमें, पर उनके द्वारा एकमात्र आज्ञा-पालनके रूपमें उस उत्तरदायित्वका निर्वाह होता रहा।

देवर्षि नारद द्वारा प्रणीत 'नारद भक्ति-सूत्र' ही श्रीपोद्दारजीकी प्रेम - साधनाका मूलाधार रहा है। भक्तिके सिद्धान्त - स्वरूप - साधना - सिद्धिका विवेचन-वर्णन करते हुए देवर्षि नारदने भक्ति-सूत्रके अन्तमें महान फल-रूपा अन्तिम परिणतिकी ओर संकेत करते हुए कहा है 'स प्रेष्ठं लभते'। यही सत्य श्रीपोद्दारजीके जीवनमें चरितार्थ हुआ। अव परमश्रेष्ठ परमप्रेष्ठ प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवके अतिरिक्त उन्हें कुछ रुचता ही नहीं था। समाज-हित, आर्त-सेवा, धर्म-प्रचार, पत्रिका-सम्पादन आदि-आदि जो कार्य पहलेसे होते आ रहे थे, वे सब उनके जीवनके उत्तर कालमें भी होते रहे, परंतु उन कार्योंको सम्पन्न करनेमें उनका मन नहीं लगता था। वे सव कार्य होते थे स्वभाववशात् मात्र कर्तव्य-बोधकी भावनासे।

श्रीमद्भगवद्गीताके अनुसार साधु-परित्राण और धर्म-संस्थापन भगवानका एक ऐसा विशेष कार्य है, जिसके लिये कभी वे स्वयं आते हैं और कभी अपनी विशिष्ट विभूतियोंको भेजते हैं, किन्तु उसी श्रीमद्भगवद्गीताके अनुसार विशेष कार्यसे भी बढ़कर अति विशेष कार्य है 'सर्वधर्मान्परित्यज्य' 'मन्मना भव मद्भक्तः'। अब यह अति विशेष कार्य ही श्रीपोद्दारजीके जीवनका एक मात्र कार्य रह गया था। श्रीपोद्दारजीकी एकान्तप्रियता अधिकाधिक बढ़ती चली जा रही थी। उनके मनकी माँग कुछ और ही थी।

भरे रहें रस-रूप-सौख्यमय प्रिय वे मम बाह्याभ्यन्तर।
उनकी रति में हँसता-रोता रहे नाचता नित अन्तर॥

(पद रत्नाकर/पद-१०१५)

प्रिया - प्रियतम श्रीराधा - माधवका ही एक मात्र अस्तित्व रह गया था श्रीपोद्दारजीके तन-मन-नयनमें।

मधुर हुआ जीवन सारा माधुर्य प्राप्त करके तेरा।
पा तेरा सौन्दर्य, हुआ सुन्दर बाह्याभ्यन्तर मेरा॥

(पद रत्नाकर/पद-१११६)

रस-सागर श्रीराधा-माधवकी सरसताका आप्लावन उनके हृदयमें इतना अधिक हुआ कि केवल अभ्यन्तर ही नहीं, उनके बाह्य जीवनकी हर चेष्टामें रस-ही-रस भर गया। वह सरसता उनकी चालमें, उनकी चितवनमें, उनके बोलनमें, उनके बतरावनमें, उनके अवलोकनमें उनके कण-कणमें झलकती रहती थी; नहीं-नहीं, छलकती रहती थी। उनका हर व्यवहार और हर विचार सरसताका आगार बन गया था। उनके रोम-रोम इतने रसार्द्र हो चुके थे कि उनके अनन्त रोम बन गये थे अनन्त निर्झर उस दिव्य सरसताके।

रस-साहित्य एवं रसोत्सव—

अब श्रीपोद्दारजीके भीतर-बाहर लहरा रहा था प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवका भाव-सिन्धु। कभी वे भाव-सिन्धुकी अतल गहराईमें उतर जाते और कभी वे भाव-सिन्धुके तटपर बैठकर उच्छलित उत्तुंग तरंगोंकी शोभाका दर्शन करते। भाव-सिन्धुकी उसी गहराईकी और उसी शोभाकी किंचित् झलक ही 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' नामक ग्रन्थके पृष्ठोंपर प्रतिविम्बित हो उठी है। इस ग्रन्थके बारेमें आचार्य श्रीहजारीप्रसादजी द्विवेदीने लिखा है—'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' पढ़ गया हूँ।

भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी सभी रचनाओंमें भक्तिकी महिमा प्रकट होती है, पर यह ग्रन्थ तो भक्ति-भावना और शास्त्रीय चिन्तनका अद्भुत समन्वय है। यह भाईजी जैसे भक्तकी लेखनीसे ही लिखा जा सकता है। श्रीराधा-रानीके दिव्य रूप और भगवान श्रीकृष्णके चिद्घन विग्रह रूपका विवेचन इस प्रकारकी सहज वाणीमें वही कर सकता है, जिसने उन्हें पाया है, सौ-सौ रूपोंमें साक्षात्कार किया है।"

श्रीपोद्दारजीने अपने दिव्य नेत्रोंसे जिन ललित लीलाओंका दर्शन किया और उनके हृदयमें दिव्य भावोंकी जो रसमयी तरंगें उठीं, उनमेंसे कुछका वर्णन उन्होंने पद्यात्मक रूपमें भी किया है। ये सरस वर्णन 'मधुर', 'षोडश गीत', 'पद-रत्नाकर' आदि पुस्तकोंके रूपमें प्रकाशित हो चुके हैं। 'मधुर'में प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवकी स्नेहसनी मधुर लीलाओंका गद्य-पद्य-रूपमें वर्णन किया गया है। 'षोडश गीत'के सोलह पदोंमें परम स्नेही श्रीराधा-माधवके मधुर संलापका वर्णन है, जिसमें परस्परके प्रति सर्वसमर्पणकी लोकोत्तर छवि देखनेको मिलती है। 'पद-रत्नाकर' तो श्रीपोद्दारजीकी सम्पूर्ण पद्यात्मक रचनाओंका संग्रह है। 'पद-रत्नाकर' ग्रन्थको

देखकर प्रयाग विश्वविद्यालके हिन्दी विभागके विभागाध्यक्ष पदको कभी विभूषित करनेवाले डा० श्रीरामकुमारजी वर्माने लिखा है:—

"इस अनुपम रसानुभूतिके ग्रन्थको बार-बार पढ़कर संत सूरदासकी काव्य-मन्दाकिनीमें अवगाहनका आनन्द प्राप्त होता है। श्रीपोद्दारजी कितने बड़े भक्त कवि थे, यह 'पद-रत्नाकर'को पढ़कर आज ही ज्ञात हो सका।"

भाव-सिन्धुमें निरन्तर निमज्जन और भाव-बिन्दुओंका अनायास उच्छलन श्रीपोद्दारजीके उत्तर जीवनका सहज स्वभाव बन गया था। निमज्जनकी अधिकताका स्वाभाविक परिणाम था भावोच्छलन। उच्छलित भाव-बिन्दुओंके रसास्वादनके लिये प्रेमी भक्त-जनोंके अन्तरमें सदैव उत्कण्ठा बनी रहती थी। इस प्रकारके रसास्वादनका सबसे सुन्दर अवसर होता था गीतावाटिकाका श्रीराधाष्टमी-महोत्सव। यह महोत्सव भाव-वितरण और भाव-आस्वादनका बड़ा सशक्त माध्यम बन गया था। सरसता-सुन्दरता-सबलता-श्रेष्ठताके कारण संत, साधक और साधु पुरुष वर्षभर प्रतीक्षा करते थे कि कब भाद्र-शुक्लाष्टमी आयेगी और कब गीतावाटिकामें हमलोग पहुँच जायेंगे श्रीराधाष्टमी

महोत्सवके लिये । श्रीपोद्दारजीकी उपस्थितिका, उनकी दृष्टिका, उनकी वाणीका प्रभाव ऐसा विचित्र होता था कि उत्सवमें उपस्थित लोग लोक-धरातलपर रहते ही नहीं थे । अयोध्याके महन्त श्रीलक्ष्मणकिलाधीश स्वामी श्रीसीतारामशरणजी महाराजने लिखा है—"श्रीपोद्दारजी रसोपासनाके एक सरस स्रोत थे। वे भक्तोंकी रहनीके आदर्श थे। उनके सरल एवं सरस जीवनको देखने मात्रसे भावजगतमें लोग प्रवेश कर जाते थे। श्रीराधाष्टमीका ऐतिहासिक महोत्सव जिसने देखा होगा, उसको ज्ञात होगा कि वे कितने उच्च कोटिके महापुरुष थे। श्रीराधाष्टमीके महोत्सवका दर्शन मैंने भी गोरखपुर स्थित गीतावाटिकामें किया है। इस दिन वहाँ साधारण जीव भी आनन्द राज्यमें प्रवेश कर श्रीराधा-भावका दर्शन कर लेता था। धार्मिक जगतमें सरस भक्ति— श्रीराधाभावका वितरण उन्होंने जिस उदारतासे किया, उसका दूसरा उदाहरण अब दुर्लभ है।"

रसपूर्ण प्रवचन—

श्रीराधाष्टमी महोत्सवके पंडालमें जब श्रीपोद्दारजीका भावभरा प्रवचन हुआ करता था, उस समय श्रद्धालुओंकी एकाग्रता दर्शनीय हुआ

करती थी। श्रीपोद्दारजीका प्रवचन इतना सार-गर्भित हुआ करता था कि श्रेष्ठ जन उनके प्रवचनको सुननेके लिये सदा उत्सुक रहा करते थे।

देहरादूनके पास राजपुरामें पूज्या आनन्दमयी माँका जन्मोत्सव मनाया जा रहा था। माँके अनुरोधपर श्रीपोद्दारजी जन्मोत्सवमें पधारे। वहाँ वृन्दावनके संत-मण्डलके भूषण-स्वरूप पूज्य श्रीहरिबाबाने निवेदन किया कि हम तो आपसे गोपी-प्रेमपर सुनना चाहते हैं। फिर उन संतोंकी सभामें गोपी-प्रेमपर ही श्रीपोद्दारजीका प्रवचन हुआ।

ऐसा ही एक अन्य प्रसंग स्वर्गाश्रमका है। गीताभवनका हॉल सत्संगी श्रोताओंसे भरा हुआ था। श्रीपोद्दारजी प्रवचन हेतु पधारे। ज्यों ही वे मंचपर विराजे, लोग अपने-अपने प्रश्न लिख-लिख करके भेजने लगे। श्रीपोद्दारजीके पास ही मंचपर विराज रहे थे मानव-सेवा-संघके संस्थापक पूज्य स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज। स्वामीजीने श्रीपोद्दारजीसे कहा—भाईजी! ये सारे प्रश्न आप मुझे दे दें। इन सत्संगियोंके प्रश्न न कभी समाप्त हुए और न होंगे। इन सारे प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिये मैं पर्याप्त हूँ। मैं इनसे निपट लूँगा। आप तो श्रीराधा-भावपर बोलें।

स्वामीजीके समक्ष श्रीपोद्दारजी तो नत-मस्तक थे। कहनेका तात्पर्य यह है कि सिद्ध स्तरके अच्छे-अच्छे संत भी श्रीपोद्दारजीके मुखसे श्रीराधाभावपर सुननेके लिये लालायित रहा करते थे। श्रीपोद्दारजीकी सिद्ध वाणीकी प्रसिद्धि सीमातीत थी।

लोकालयसे अरुचि—

श्रीराधाष्टमीका उत्सव, श्रीराधा-माधव-भावकी चर्चा आदि श्रीपोद्दारजीको प्रियातिप्रिय थी। अपने अनन्य परिकर पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीसे श्रीपोद्दारजी आधी-आधी रातसे भी अधिक समयतक भावभरे पद सुना करते थे। यह सब तो श्रीपोद्दारजीको अभीष्ट था। इस अभीष्टसे अतिरिक्त जो भी था, वह सारा-का-सारा अब अप्रिय लगता था।

'ज्ञानोत्तर भावराज्य'में सदा विहरण करनेवाले श्रीपोद्दारजीको अब लोकालय सुहाता नहीं था, उन्हें भाता था कमरेका निर्जन एकान्त। लोगोंसे मिलना उनको अच्छा नहीं लगता था। लोग अपनी उलझनोंका समाधान चाहते थे, पर उनकी मनःस्थिति ऐसी नहीं थी कि वे समाधान दे सकें।

आते लोग, सुनाते अपनी विषम समस्याओंकी बात ।
सुलझानेको उन्हें, पूछते साधन सविनय, कर प्रणिपात ।।
कहूँ उन्हें, समझाऊँ क्या मैं, जब न दीखता कुछ सत्, सार।
सुलझानेवाले उस मनको गया सर्वथा लकवा मार ।।
(पद रत्नाकर/पद-१२०६)

जीवनके पटाक्षेप होनेके पूर्व-वर्षोंमें उनकी स्थिति थी—

सम्बन्ध सारे मिट गये, बस, एक प्रियतम रह गया ।
रस-सुधा-सुरसरिता बना 'मैं' रस-जलधिमें बह गया ।।
(पद रत्नाकर/पद-१०८९)

पाञ्चभौतिक कलेवरके अन्तरालमें 'रसराज'—

अपनी इस मधुमयी भावमयी स्थितिको छिपाये रखनेके लिये उन्होंने एक नया शब्द गढ़ लिया था कि 'माथा खराब' हो गया है, परन्तु यह स्थिति कबतक छिपी रहती ? सब जान गये थे कि यह माथा-खराबी नहीं, अपितु महाभावमयी दिव्य भागवती स्थिति भाव-समाधि है । जब भाव-समाधिकी स्थिति रहती, तब तो वे प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवकी ललित लीलामें लवलीन

रहते ही, पर जब भाव-समाधिकी स्थिति नहीं रहती, तब भी वे हमलोगोंकी भाँति जागतिक धरातलपर नहीं रहते थे। साधारण चेतनावस्थामें मनकी वृत्तियाँ भले शरीर - धरातलपर रहती थीं, परन्तु इसके बाद भी उनका मन जुड़ा रहता था अपने आराध्य श्रीराधा - माधवसे। जीवन इतना अधिक श्रीराधामाधवमय हो गया था कि साधारण चेतनावस्थामें उनके द्वारा जो क्रियाएँ होती थीं, उसके कर्ता वे श्रीपोद्दारजो नहीं, 'कोई और ही' होता था। उन्होंने कहा है—

मेरे द्वारा बोल रहे हैं केवल मेरे वे भगवान् ।
मेरे द्वारा छेड़ रहे हैं वे निज मधु मुरली की तान ॥
मेरे जीवनमें है अब तो एक मात्र उनका हो स्थान ।
अतः उन्हींको होती मुझमें क्रिया नित्य सब क्षुद्र महान॥
(पद रत्नाकर/पद-१०९४)

नहीं कामका रहा, छोड़ दो इसकी आशा ।
रक्खोगे, तो तुम्हें मिलेगी नित्य निराशा ॥
भस्म हो गयी बुद्धि जागतिक जल - भुनकर सब ।
रही न कोई इसमें भोग - विचार - भूमि अब ॥
क्या करना, क्या नहीं—सोच सकता न तनिक यह ।
सदा सहज ही उदासीन रहता, सब कुछ सह ॥

होता, जो होना है, उसके ही करनेसे ।
नहीं इसे कोई मतलब जीने - मरनेसे ॥
नहीं रहा अब किसी द्वन्द्वसे भी परिचय है ।
हुआ करे कुछ भी, यह तो अब नित निर्भय है ॥
लिखता - लिखवाता वही, करता - करवाता वही ।
पता नहीं क्या गलत है, पता नहीं क्या है सही ॥
(पद रत्नाकर/पद-१११०)

भाव-समाधिकी स्थिति तो महाभावमयी थी ही, परन्तु साधारण चेतनावस्थामें भी श्रीपोद्दारजीकी ऐसी परम लोकोत्तर दिव्य भावमयी स्थितिको पहचानकर-परखकर एक अति निकटस्थ संत* कहा करते थे—श्रीपोद्दार महाराजके इस स्थूल कलेवरके भीतर अब श्रीपोद्दारजी नहीं, रसराज श्रीकृष्ण विलसित हो रहे हैं। वे श्रीकृष्ण ही सब कुछ करते-करवाते हैं। इस स्थूल कलेवरके अन्तरालसे भगवान् श्रीकृष्ण ही लीलायमान हैं और वे ही सारा नियंत्रण - संचालन कर रहे हैं ।

जिस तरह श्रीचैतन्य महाप्रभुमें अति निकटवर्ती भक्तोंको महाभावस्वरूपा रासेश्वरी श्रीराधाके दर्शन होते थे, इसी तरह कतिपय अति निकटस्थ जनोंको

* आप हैं परम पूज्य श्रीराधा बाबा

श्रीपोद्दारजीमें रसराजस्वरूप रासेश्वर श्रीकृष्णकी दर्शनानुभूति होती थी। उन निकटवर्ती संतका हृदय उमड़ता था श्रीपोद्दारजीको रसराज कहनेके लिये, परन्तु वे रस-राज्यके राजको, उस रहस्यको अव्यक्त रहने देनेमें ही उत्तमता समझते थे। यही कारण है कि वे श्रीपोद्दारजीको रसराजके स्थानपर महाराज कहा करते थे, जहाँ महान राज छिपा हुआ है और जो महान रहस्यका मूर्तिमान स्वरूप है।

भाव-लवलीन जीवन

संस्कृतके उद्भट पण्डित और 'भारतीय वाङ्मयमें श्रीराधा' नामक ग्रन्थके विद्वान लेखक आचार्य श्रीबलदेव प्रसादजी उपाध्यायने श्रीपोद्दारजीकी भावमयी स्थितिको देखकर कहा था कि मैं श्रीपोद्दारजीको आधुनिक युगका महाप्रभु चैतन्य मानता हूँ। इसी प्रकार हिन्दी साहित्य जगतके श्रेष्ठ समालोचक डा० श्रीतपेश्वरनाथजीने कहा था कि मेरा तो विश्वास है कि वे (श्रीपोद्दारजी) मध्ययुगीन प्रेमी संत श्रीश्रीचैतन्यदेवके नवीन संस्करण थे। अपनी भावदशाके कारण श्रीपोद्दारजी लोगोंको अभिनव चैतन्यदेवके रूपमें ही प्रतिभासित होने लग गये थे।

श्रीचैतन्य महाप्रभुके अन्तिम दिवसोंमें जैसी

उनकी भाव-तल्लीनता थी, वैसी ही भाव-तल्लीनता थी श्रीपोद्दारजीकी भी अन्तिम दिवसोंमें। श्रीमहाप्रभुजीका अन्तिम जीवन व्यतीत हुआ जगन्नाथपुरीके गम्भीरा-कक्षमें तो श्रीपोद्दारजीका व्यतीत हुआ गोरखपुरके वाटिका-कक्षमें। गम्भीरा-कक्षमें और वाटिका-कक्षमें दोनों विभूतियोंकी मनस्थिति एक थी, किन्तु परिस्थिति भिन्न थी। संन्यासाश्रमी होनेके कारण श्रीमहाप्रभुजी परिवारसे दूर थे तो गृहस्थाश्रमी होनेके कारण श्रीपोद्दारजी परिवारके मध्य थे। गम्भीराके विरक्त जीवनमें जन-संसर्गका अभाव था तो वाटिकाके सम्पादकीय जीवनमें जन-सम्पर्कका बाहुल्य था। वहाँ गम्भीरा - जीवनमें लोकोपकारी कार्योंकी कोई कल्पना ही नहीं थी, पर यहाँ वाटिका-जीवनमें समाजसेवा-धर्मप्रचारका कार्य संलग्न था। दोनों विभूतियोंकी बाह्य परिस्थितियोंमें महान अन्तर था, अतः दोनोंके जीवनके बाह्य स्वरूपमें भी पर्याप्त अन्तर था। यदि वहाँ प्रेमाश्रुओंका अविरल निर्झरण था तो यहाँ प्रेमाश्रुओंका निरन्तर संगोपन था। यदि वहाँ भाव-तरंगोंका उन्मुक्त उच्छलन था तो यहाँ भाव-तरंगोंका नितान्त गाम्भीर्य था। बाह्य प्रेम-दशामें भिन्नता भले ही हो, परन्तु इन दोनों विभूतियोंकी प्रेम-दिशा एक ही थी, उनकी रसमयता अपनी पराकाष्ठापर थी।

श्रीकृष्ण-प्रेममें नित्य निरन्तर छके रहनेवाले प्रेमोन्मत्त श्रीचैतन्यमहाप्रभुके जीवनपर प्रकाश डालते हुए श्रीपोद्दारजीने अपने प्रवचनमें एक बार कहा था— गम्भीराके एकान्तमें रसनिमग्न श्रीचैतन्यमहाप्रभुके जीवनका उदाहरण ऐसा अनुपम और अद्वितीय है कि वे जगतके तटपर आये ही नहीं, सदा भावोंकी लहरोंपर लहराते रहे।

इसी प्रकार श्रीपोद्दारजीके बारेमें भी संकोच रहित और संदेह रहित होकर कहा जा सकता है कि वे जगतके तटपर रह करके भी जगतमें रहे ही नहीं। सदा लोकातीत भावोंकी गहराईमें डूबे रहे। प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवके दिव्यरूप, दिव्यलीला, दिव्यसम्बन्ध, दिव्यविलास, दिव्यआलाप, दिव्य-संलाप, दिव्यसमर्पण, दिव्यप्रेमकी जो सच्चिदानन्दमयी दिव्य सघन रस-सार-सुधा थी,उसका 'मूकास्वादनवत्' नित्य निरन्तर आस्वादन करना, यही श्रीपोद्दारजीके अन्तिम वर्षोंके अंतरंग जीवनका वास्तविक स्वरूप रहा।

महाभावमयी दिव्य भागवती स्थितिमें नित्य लीन रहनेवाले रस-सिद्ध-संत श्रीपोद्दारजी, जिनका हृदय-पटल ही रास-मण्डलके रूपमें परिणत हो गया

था और जहाँ रासेश्वरी-रासेश्वर श्रीराधा-माधवका नित नव ललित लीला-विहार चलता ही रहता था, उन स्वनाम-धन्य महारस-विभूति श्रीपोद्दारजीके श्रीचरणोंमें कोटि-कोटि वन्दन ।



श्रीभगवान्के अनुपम यन्त्र श्रीपोद्दारजी

[पूज्य महात्मा श्रीसीतारामदास ओंकारनाथजी महाराज]

मेरे गुरुदेव नित्यलोकगत पूज्यपाद श्रीरामदयाल मजूमदार बाबाने सन् १९२७ के आसपास एक दिन 'कल्याण'की एक प्रति हाथमें लेकर मुझे कहा—'देखो, गोरखपुरसे 'कल्याण' नामक एक मासिक पत्रिका निकली है। कैसे सुन्दर चित्र हैं! चित्र देखकर प्राण भर जाते हैं।' तभी मैंने पहले-पहल 'कल्याण'का नाम सुना था। सम्भवतः एकाध वर्ष पूर्व ही 'कल्याण' का प्रकाशन आरम्भ हुआ था।

इसके बाद अध्यापक-जीवनमें गीताप्रेससे भक्त-चरित, संत-अङ्क आदि मँगाकर उनको पढ़ता, जिससे यथेष्ट आनन्द प्राप्त होता। 'कल्याण'की भाषा संस्कृत-गर्भित होनेके कारण, उसे समझनेमें मुझे विशेष असुविधा नहीं होती थी।

कुछ समय पश्चात् मैंने १० महीनेका मौन-व्रत लिया। इसी अवधिमें 'कल्याण'का 'भक्ताङ्क' प्रकाशित हुआ। एक भक्तने मेरी लिखी हुई 'दाशरथिस्मृति-

भूषण'की जीवनी उसमें प्रकाशनार्थ भेज दी और श्रीपोद्दारजीने उसे प्रकाशित कर दिया। मौनव्रत पूरा होनेपर हमने लेख देखा और यहींसे पोद्दारजीसे हमारा परिचय हुआ। पीछे सम्भवतः १६५२ में उनके प्रथम दर्शन हुए।

उन दिनों मैं मौन रहता था। उस मौन-कालमें मैंने गीताप्रेससे प्रकाशित पुस्तकोंका बङ्गानुवाद किया था। कुछ पुस्तकोंका अनुवाद मैं पहले भी कर चुका था। उस समय मनमें गीताप्रेसके द्वारपर दण्डवत् प्रणाम करनेकी प्रेरणा हुई। १६५५ में मैंने मौन त्याग दिया और विभिन्न स्थानोंमें नाम-प्रचार करते हुए गोरखपुर जाकर गीताप्रेसके द्वारपर दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीपोद्दार बाबाने साथ रहकर पूरा प्रेस दिखलाया। श्रीपोद्दारजीका अकृत्रिम सहज प्रेम भूलनेकी वस्तु नहीं है। उनके प्रेमने चिरकालके लिये हृदयपर अधिकार जमा लिया है।

श्रीपोद्दार बाबाके शरीरके आश्रयसे हमारे प्रभुने जो अपूर्व शास्त्र-प्रचार एवं धर्म-प्रचारकी लीला की है, वह न कभी हुई है और न होगी। ऐसे संतके चरणोंमें मस्तक अपने-आप नत हो जाता है। मनुष्य मन्दिरके द्वारपर देवताको प्रणाम करते हैं; इसीलिये कि मन्दिर श्रीभगवान्का मन्दिर है, मन्दिरके द्वारपर प्रणाम

करनेपर देवदर्शनका अधिकार-लाभ होता है। श्रीभगवान्‌के धर्म-प्रचारके अनुपम यन्त्र श्रीपोद्दार बाबा थे—उनके हृदयपर अधिकार करके श्रीभगवान स्वयं ही कार्य कर रहे थे; उनके भीतर और बाहर श्रीभगवान् ही विद्यमान थे। श्रीपोद्दार बाबा मुक्त थे। इस प्रकारका शास्त्र-प्रचार एवं धर्म-प्रचार देहाभिमानी-द्वारा नहीं हो सकता। गैस बत्तीकी मैंटल (mantel) भस्म हो जानेपर ही प्रकाश फैलाती है।

पीछे मैंने पुनः मौनव्रत ले लिया और उस अवधिमें श्रीपोद्दार बाबाकृत भाषाटीकाकी सहायता लेकर मैंने श्रीरामचरितमानसका बङ्गानुवाद किया। उस अनुवादको मैंने श्रीपोद्दार बाबा और श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके नामसे उत्सर्ग किया। उत्सर्ग-पत्रमें मैंने लिखा—

"अनन्त करुणा-पारावार पुरुषोत्तम श्रीभगवान् दो अलौकिक अनुपम यन्त्रोंको लेकर इस दारुण कलियुगमें सर्वत्र जो धर्म-प्रचार, श्रीनाम-प्रचार और शास्त्र-प्रचार कर रहे हैं, इस प्रकारके प्रचारकी बात मैंने किसी इतिहासमें, पुराणमें नहीं देखी, अथवा किसी धर्म-प्रचारकने इस प्रकार विश्वव्यापी धर्म-प्रचार किया हो, यह नहीं सुना। श्रीभगवान्‌के सुन्दर उदित दो रमणीय चन्द्र परम प्रेमभाजन अशेष

श्रद्धास्पद 'कल्याण-सम्पादक' श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार महाशय और श्रीयुत चिम्मनलालजी गोस्वामीके पवित्र नामपर उनके अति प्रियतम 'श्रीरामचरितमानस'का बङ्गानुवाद उत्सर्ग किया।''

—सीतारामदास

१९६४में मैं पुनः गोरखपुर गया। श्रीपोद्दार बाबाने मुझे अपनी गीतावाटिकामें ठहरानेकी सादर व्यवस्था की। उनके सानन्द सप्रेम व्यवहारकी कोई तुलना नहीं थी। श्रीपोद्दार बाबाके साथ तबसे बराबर पत्र-व्यवहार होता रहा।

इस सर्वहारी युगमें सनातनधर्मकी रक्षा तथा विश्वका परम कल्याण करनेके लिये ही श्रीभगवान्‌की इच्छासे श्रीपोद्दार बाबाके शरीरका आश्रय लेकर 'कल्याण' मासिक पत्रका आविर्भाव हुआ है। दुःख-शोक-रोग-ज्वाला-यन्त्रणासे सतत संतप्त, पथ-भ्रान्त असंख्य नर-नारी 'कल्याण'की शान्त, स्निग्ध सुशीतल, छायामें विश्राम प्राप्तकर कृतार्थ हुए हैं और हो रहे हैं।

सन् १९६९ के अप्रैल मासमें मैं पुनः ऋषिकेश गया। श्रीपोद्दार बाबा वहाँ थे। मैं उनका साक्षात्कार करने गया। उस समय उनके पेटमें भीषण शूल था; पर मेरा सत्कार करनेके लिये उन्होंने इसकी तनिक भी

परवाह नहीं की, न किसीसे कुछ कहा। वे आनन्द-पूर्वक मिले। बातें हुई, कीर्तन-सत्सङ्ग हुआ। उन्होंने श्रीठाकुर-सेवाके लिये प्रचुर मात्रामें फल दिये और मुझे विदा करनेके लिये घाटतक आये। मैं उस समय नहीं समझ पाया कि वह विदा अन्तिम विदा थी और यह भी उस समय समझमें नहीं आया कि उनके पवित्रतम प्रेममय भुवन-मङ्गल श्रीविग्रहको फिर देख न पाऊंगा। यह दर्शन इस जन्मका अन्तिम दर्शन था।

जगत्में उनकी कोई उपमा नहीं। जैसे सागरकी उपमा सागर और आकाशकी उपमा आकाश है, उसी प्रकार धार्मिक, चरित्रवान्, प्रेमी, तपोनिष्ठ, मधुरभाषी, सज्जनानुरागी, परमभक्त, आदर्श पुरुष हमारे श्रीपोद्दार बाबाकी उपमा हमारे पोद्दार बाबा हैं।

श्रीकृष्णप्राण भगवद्भक्त श्रीपोद्दारजी

[पूज्य स्वामी श्रीसनातनदेवजी]

संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही ।
चितवहिं राम कृपा करि जेही ॥

एकबार किसीने श्रीगोसाईंजीकी उक्त अर्द्धालीका उच्चारण करते हुए पूज्य श्रीउड़िया बाबाजी महाराजसे पूछा—'संत कौन और विशुद्ध संत कौन ?'

श्रीमहाराजजी बोले—"जो केवल ज्ञानी हों, वे 'संत' और जो ज्ञानी-ध्यानी दोनों हों, वे 'विशुद्ध संत' कहे जा सकते हैं।"

यह था एक परम विरक्त ब्रह्मनिष्ठ संतशिरोमणिका निर्णय। परंतु जो ज्ञानी-ध्यानी ही नहीं, सर्वथा निष्काम कर्मयोगी और अनन्य भगवत्प्रेमी भी हों, उन्हें क्या कहा जाये ? ऐसे थे हमारे परम श्रद्धेय नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार।

श्रीभाईजीका ध्यानाभ्यास तो तभी आरम्भ हो गया था, जब उन्होंने शिमलापालमें भगवन्नामजपके द्वारा अपनी आध्यात्मिक साधनाका श्रीगणेश किया

था। आरम्भमें उन्होंने श्रीविष्णुभगवान्‌का ध्यान किया। फिर अचिन्त्य निर्गुण-निराकार तत्त्वमें स्थिति प्राप्त की और फिर श्रीव्रजनवयुवराज एवं वृन्दावनेश्वरी-की युगलमूर्ति उनके हृदयाकाशमें आविर्भूत हुई। उनके लिये किसी भी प्रकारका ध्यान अनायास और सहज-सिद्ध था। अपने परम पवित्र साधनामय जीवनके अन्तिम चरणोंमें तो उनके लिये भगवल्लीलाओंमें प्रवेश और भावसमाधि भी सामान्य बात थी। श्रीराधा-माधव सर्वदा उनके हृदय-प्राङ्गणमें क्रीड़ा करते थे और वे अपना कोई संकल्प न होनेपर भी भावसमाधिमें तल्लीन हो जाते थे। श्रीयुगलसरकार ही उनकी चर्चाके विषय रह गये थे। लेख, कविता और व्याख्यान आदिमें उन्हींकी चर्चा होती थी। इस प्रकार कृष्णमय होकर ही उन्होंने श्रीकृष्णकी नित्यलीलामें प्रवेश किया।

श्रीकृष्णप्रेम ही उनका जीवन था। श्रीकृष्णके लिये उनकी वाणी और लेखनी मुखरित हो उठी थी। उन्होंने जो कुछ कहा और जो कुछ लिखा, उसमें श्रीराधा-माधवका उज्ज्वल प्रेम छलछलाता था। उस लिखने और बोलनेमें भी उनका अपना कर्तृत्व नहीं था। उनके द्वारा मानो स्वयं श्रीकृष्ण ही लिखते और बोलते थे। एक पदमें उन्होंने इसका संकेत किया है—

लिखता-लिखवाता वही, करता-करवाता वही ।
पता नहीं, क्या गलत है; पता नहीं, क्या है सही ।।

इस प्रकार उनके द्वारा श्रीराधा-माधवकी मधुर लीलाओंका जो उज्ज्वल स्वरूप प्रकट हुआ, उसने न जाने कितने भगवत्प्रेमियोंको आनन्दविभोर कर दिया। तत्त्वदर्शी महापुरुष निखिल अनात्मवर्गका निषेध करके जिस परमतत्त्वका निषेधावधिरूपसे साक्षात्कार करते हैं, वही सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म है। श्रुतिने 'रसो वै सः' कहकर उसे रसस्वरूप बताया है। प्रेमियोंकी दृष्टिमें उस रसब्रह्मकी सरसता ही भगवल्लीला है। अतः वहाँ लीलानायक, लीलापरिकर, लीलाधाम और लीलाविलास – सभी रसस्वरूप हैं। श्रीभाईजी इसे 'रसाद्वैत' कहते थे। इस रसाद्वैतकी अनुभूति तत्त्वदर्शी ही कर सकते हैं। जो तत्त्वदर्शनकी शान्तिमें रमणावस्थासे अतीत होकर उच्चतर स्थितिकी ओर अग्रसर होते हैं, उन्हींको भगवदनुग्रहसे इस परम दिव्य रसविलासकी अनुभूति होती है। यह जीवका पुरुषार्थ नहीं, भगवान्‌की अनुग्रहशक्तिका वरदान होता है। वही ज्ञानोत्तरा पराभक्ति है। जबतक भोग और मोक्षकी स्पृहाका लेश भी शेष रहता है, तबतक इस अद्भुत रसविलासका आविर्भाव नहीं होता; अतः यह स्थिति जीवन्मुक्तोंके लिये भी दुर्लभ है।

यह दुर्लभ स्थिति श्रीभाईजीको सर्वथा सुलभ थी। श्रीभाईजी भगवन्मय थे और उनकी दृष्टिमें भगवान् श्रीकृष्णके सिवा और किसीकी कोई सत्ता नहीं थी। उन्हींके शब्दोंमें सुनिये—

मेरेद्वारा बोल रहे हैं
केवल मेरे वे भगवान।
मेरेद्वारा छेड़ रहे हैं
वे निज मधु मुरलीकी तान॥
मेरे जीवनमें है अब तो
एकमात्र उनका ही स्थान।
अतः उन्हींकी होती मुझमें
क्रिया नित्य सब क्षुद्र-महान॥

ऐसे 'कृष्णप्राण' श्रीभाईजी वास्तवमें गुणिगणमें अग्रगण्य थे। उनके कारण अवश्य उनकी जननीकी कोख सफल हुई।

पुत्रवती जुबती जग सोई।
रघुबर भगत जासु सुत होई॥

श्रीभाईजी सचमुच परम विशुद्ध संत 'श्रीकृष्ण-प्राण भगवद्भक्त' थे।

भगवद्विश्वासी एवं भक्त-हृदय श्रीपोद्दारजी

[पूज्य श्रीगुरुजी श्रीमाधवराव सदाशिव गोलवलकर]

गीताप्रेस और उससे प्रकाशित मासिक 'कल्याण' एवं अन्य धर्मग्रन्थोंके कारण गोरखपुर विख्यात है। गीताप्रेसका धर्मप्रचारका विशुद्ध उद्देश्य, ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दका आदिका शुद्ध धन-प्रदान और श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके समान धर्मनिष्ठ कर्मठ संचालक—इनका अभूतपूर्व संयोग—एक अभूतपूर्व वायुमण्डल बनाता हुआ अनुभव होता है।

अपने नित्यके भ्रमणमें मैं गोरखपुर गया था। मेरे सहयोगियोंने श्रद्धेय भाईजीसे मिलनेकी योजना बना रखी थी। ठीक समयपर मैंने उनके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त किया। एक मध्यम कदकी प्रसन्न वदन मूर्ति मेरे सम्मुख उपस्थित हुई। सौम्यता-माधुर्य उनके शब्दोंसे टपकते थे। प्रत्येक शब्दमें धर्मके प्रति अपार श्रद्धा, समाजके प्रति कारुण्य भाव, प्रखर राष्ट्रभक्ति और सबकी महान् प्रेरक श्रीभगवान्‌के चरणकमलोंमें प्रगाढ़ भक्ति अभिव्यक्त हो रही थी।

इसके पश्चात् मैंने अनेक वार उनके दर्शन किये। वर्तमान परिस्थिति—धर्मश्रद्धाका ह्रास, नीतिमत्ताका ह्रास, विशुद्ध राष्ट्रभक्तिकी न्यूनता, अपने समाजकी विच्छिन्नता तथा इन सबके परिणामस्वरूप अविवेकका प्रादुर्भाव इत्यादि महत्त्वपूर्ण विषयोंपर उनके प्रौढ़ विचार सुने। भगवद्भक्ति, गो-भक्तिका साक्षात्कार उनके शब्द-शब्दसे होता हुआ अनुभव किया। गोवंशकी हत्या, उसकी दुर्दशासे वे अति व्यथित रहते थे। भिन्न-भिन्न साधु-महात्माओंको अपने-अपने अलग मार्गसे चलते देख तथा उनमें सम्पूर्ण समाजकी उन्नतिके हेतु सामञ्जस्यकी न्यूनताको देख वे व्यथित तथा चिन्तित थे। परंतु इस मनोव्यथा और चिन्ताके होते हुए भी सर्व-कल्याणकारी श्रीभगवान्‌के प्रति अटूट विश्वास तथा प्रेम होनेके कारण उनके अन्तःकरणका आनन्द और सन्तुलन अभङ्ग रहते थे।

यह सब मेरे लिये उपकारक अनुभव रहा है। उनके जीवनसे श्रीगीताके ज्ञान-कर्म-भक्तिका एकरस बोध प्राप्त करना—अपनी अल्प ग्रहणशक्तिके अनुपातमें—मेरा सद्भाग्य है।

श्रीभाईजीका जीवन इतना पुनीत राष्ट्रभक्ति, धर्मनिष्ठा और परमात्माके श्रीकृष्ण रूपमें उत्कट अविचल भक्तिसे ओत-प्रोत था कि उनका इहलोकसे

गमन, परम सौख्यमय चिरन्तन भगवल्लोकमें प्रवेश और श्रीभगवत्सांनिध्यमें चिरनिवासके रूपमें ही हुआ है—यह मेरी श्रद्धा है।

जिनके सम्बन्धमें मेरे मनमें अपार श्रद्धा और प्रेम होता है, उनका वियोग होनेपर हृदयपर गहरा आघात होता है और यद्यपि मैं अपने कर्तव्य करता रहता हूँ, पर वह घाव रिसता ही रहता है और जब कभी उनके विषयमें कुछ सोचने-कहनेका प्रसंग उपस्थित होता है, उस घावकी वेदना असह्य हो उठती है। फिर शब्द सूझते नहीं। विचार कुण्ठित-से हो जाते हैं। मन एक अवर्णनीय व्यथासे अभिभूत हो जाता है।

श्रद्धेय श्रीभाईजीके सम्बन्धमें कोई लिख सकने वाला लिखे और दीर्घ कालतक लिखता ही रहे, तो भी उसे यही कहना पड़ेगा कि—'तदपि तव गुणानां ……'पारं न याति।'

युगकी महान् विभूति श्रीपोद्दारजी

[श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, सम्पादक 'कल्याण']

सृष्टिके अनादि प्रवाहमें असंख्य संत हो चुके हैं, जिनमेंसे अधिकांशके नाम भी विस्मृतिके गर्भमें लीन हो गये हैं। जितने महापुरुषोंका आंशिक जीवनवृत इतिहासके पत्रोंमें सुरक्षित है, उनका जीवन-क्षेत्र अधिकांशमें एकदेशीय अथवा सीमित ही रहा है। उनमेंसे कोई ज्ञानी, कोई भक्त, कोई कर्मठ, कोई विरक्त, कोई लोकसंग्रही, कोई विविक्तसेवी, कोई भजनपरायण, कोई उपदेशक, कोई विद्वान, कोई निरक्षर, कोई कवि, कोई लेखक, कोई विचारक, कोई वक्ता, कोई अपरिग्रही, कोई दानी, कोई भिक्षुक, कोई धनवान्, कोई त्यागी, कोई योद्धा और कोई सर्वथा अहिंसक रहे हैं। ऐसे संत जगत्में बहुत कम हुए हैं, जिनका जीवन-क्षेत्र बहुमुखी अथवा व्यापक रहा हो। सर्वभूतसुहृद् स्वनामधन्य भगवत्स्वरूप श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका व्यक्तित्व ऐसा था, जो अनेक दृष्टियोंसे समृद्ध था। वे धनी न होनेपर भी बहुत बड़े दानी थे। उन्होंने लोकसेवाके लिये कभी एक पैसा किसीसे नहीं माँगा, न कभी पैसेके लिये कोई अपील ही निकाली, जबकि उन्होंने अपने जीवनमें अभावग्रस्त व्यक्तियोंकी, लोकहित-कारिणी संस्थाओंकी तथा अकाल, बाढ़,

भूकम्प, अग्निकाण्ड आदि दैवी प्रकोपोंके शिकार हुए पीड़ित प्राणिमात्रकी सेवामें करोड़ों रुपये खुले हाथों व्यय किये।

जाति, समाज अथवा धर्मका भेद तो कभी उन्होंने किया ही नहीं। उनका द्वार सभी जातियों, सभी वर्गों, सभी सम्प्रदायों एवं सभी धर्मावलम्बियोंके लिये खुला था। वे स्वयं कट्टर सनातनी हिंदू थे, फिर भी सभी सम्प्रदायोंके प्रति उनकी आदरबुद्धि थी। राजनीतिके किसी भी दलके साथ उनका सम्बन्ध न होनेपर भी सभी दलवालोंके साथ उनका प्रेमका सम्बन्ध था। राजनीतिसे सर्वथा अलग रहनेपर भी उन्हें राजनैतिक विषयोंका प्रचुर ज्ञान था और समय-समयपर देशके सामने आनेवाली विविध समस्याओंको सुलझानेके लिये वे 'कल्याण'के माध्यमसे बड़े ही सुन्दर और सर्वमान्य आध्यात्मिक समाधान प्रस्तुत करते थे। उच्चकोटिके प्रेमीभक्त होनेके साथ-साथ वे आदर्श कर्मी, ज्ञानी एवं योगी भी थे। शरीरसे वे कितने असङ्ग थे, इसका पता लोगोंको उनकी अन्तिम बीमारीके समय चला। जिन दिनों उनके निवासस्थानमें बिजली नहीं थी, उन दिनों ज्येष्ठ-आषाढ़की गर्मीमें भी वे सम्पादन अथवा लेखन-कार्यमें इतने तल्लीन रहते थे कि उन्हें गर्मीका भान ही नहीं होता था। योगकी चरम स्थितिके दर्शन उनकी भाव-समाधिमें सुलभ थे।

संतके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह विद्वान् अथवा लेखक भी हो। श्रीभाईजी परमोच्चकोटिके संत होनेके साथ उच्चकोटिके लेखक, कवि, वक्ता एवं ग्रन्थकार थे। यों तो संतके जीवन, उनके अस्तित्व, उनके श्वास-प्रश्वास, उनके दर्शन, स्पर्श एवं सम्भाषणसे, उनके शरीरका स्पर्श प्राप्त की हुई वायुसे ही जगत्‌का मङ्गल होता है, परंतु श्रीभाईजीने तो अपने प्रौढ़ विचारों, अपनी ओजस्विनी वाणी तथा अपनी शक्तिशालिनी लेखनीसे भी असंख्य पथभ्रष्टोंको पथ दिखाया, जिज्ञासुओंकी ज्ञान-पिपासा शान्त की, भक्तोंको भक्तिका मर्म समझाया व ज्ञानमार्गियोंको ज्ञानका रहस्य बताया। उच्चकोटिके लेखक एवं शास्त्रमर्मज्ञ विद्वान होनेके साथ-साथ पत्रकारिताके क्षेत्रमें भी उन्होंने सर्वोच्च कीर्तिमान स्थापित किया तथा अथक परिश्रम द्वारा उच्चकोटिके लोक-कल्याणकारी, आध्यात्मिक एवं नैतिक साहित्यको अत्यन्त अल्पमूल्यमें जनसाधारणको सुलभ कराके सत्साहित्य-प्रचारकी दिशामें भी बहुत बड़ा कार्य किया। चोटीके साहित्यिक, कवि, लेखक एवं विचारक प्रायः लोक-व्यवहारसे अनभिज्ञ होते हैं, परंतु हमारे श्रीभाईजीका व्यवहारपक्ष भी सबल था। उनका व्यापारविषयक ज्ञान, हिसाब-किताबमें पटुता तथा सार्वजनिक संस्थाओंके संचालन और सेवा-कार्योंके संगठनका अनुभव भी कितना बढ़ा-चढ़ा था—इसका परिचय हमें उनके द्वारा चलायी गयी तथा उन्नतिके

शिखरपर पहुँची हुई अनेक संस्थाओंके निरीक्षणसे प्राप्त होता है।

गङ्गातटपर जाकर एकान्त-सेवनकी, संन्यास लेनेकी अथवा केवल भजन-स्मरण, भगवच्चिन्तनमें ही जीवन बितानेकी वृत्ति कई बार प्रबलरूपमें जाग्रत होनेपर भी श्रीभाईजी लोकसंग्रहकी भावनासे अन्ततक कर्मक्षेत्रमें ही रहे और उन्होंने एक अनासक्त गृहस्थका जीवन बिताया। इस रूपमें उन्होंने न जाने कितने ब्रह्मचारियों, वानप्रस्थों एवं संन्यासियोंकी सेवा की। वे स्वयं संन्यासी नहीं हुए, परंतु उनके सम्पर्कसे कई अच्छे विद्वान् तथा संस्कारी महानुभाव संन्यास-ग्रहणकर अपने जीवनको सफल बना चुके हैं।

इसके अतिरिक्त वे अनेक भाषाविद् थे। प्राचीनता एवं अर्वाचीनताका अद्भुत समन्वय उनमें था। वे नियम-पालनमें कठोर, पर दूसरोंके लिये परम उदार थे, गृहस्थ होते हुए भी विदेह थे, भारतीय संस्कृतिके मूर्तिमान् स्वरूप थे। उनका जीवन धर्मकी व्याख्या था, सबको मान देनेवाले, किंतु स्वयं अमानी थे; सारा उत्तरदायित्व सँभालते हुए भी अपना किसी प्रकारका अधिकार नहीं मानते थे। अपने इष्ट भगवान् श्रीकृष्णकी भाँति उनका जीवन सभी दृष्टियोंसे आदर्श एवं पूर्ण था। वे आदर्श पिता थे, आदर्श पति थे, आदर्श पुत्र

थे, आदर्श मित्र थे, आदर्श बन्धु थे, आदर्श सेवक थे, आदर्श आत्मीय थे, आदर्श स्नेही थे, आदर्श सुहृद् थे, आदर्श गुरु थे, आदर्श शिष्य थे, आदर्श साधक थे, आदर्श सिद्ध थे, आदर्श प्रेमी थे, आदर्श कर्मयोगी थे, आदर्श ज्ञानी थे, आदर्श गृहस्थ थे, आदर्श लेखक थे, आदर्श संगठनकर्त्ता थे—इस प्रकार सभी आदर्शोंका समन्वितरूप था उनका जीवन।

सतत साधनाके द्वारा ज्ञान, भक्ति एवं योगके क्षेत्रमें सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करनेके बाद उनके लिये कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रह गया था, परंतु इन महान् उपलब्धियोंको प्राप्त करनेके बाद भी उन्हें संतोष नहीं हुआ। ज्ञान, योग और भक्तिकी जो दुर्लभ स्थिति उन्हें प्राप्त थी, उसका लाभ अधिक-से-अधिक लोगोंको मिले, जगत्के मोहग्रस्त जीव भी इस प्रकारकी स्थितिपर विश्वास करके इस ओर अग्रसर हों—इसके लिये वे व्याकुल थे और जीवनके अन्तिम क्षणतक वे जीवोंको सर्वभूत सुहृद्, अकारणकरुण, करुणावरुणालय भगवान्की ओर उन्मुख करनेके लिये सचेष्ट रहे।

'कल्याण'के माध्यमसे लाखों नर-नारियोंको कल्याणका पथ दिखानेवाले श्रीपोद्दारजी आधुनिक जगत्के बहुत उच्चकोटिके गृहस्थ संत थे, परंतु वे आत्म-ख्यापनसे कोसों दूर रहते थे। अपने मुखसे अथवा

लेखनीसे कभी उन्होंने अपने उत्कर्षको व्यक्त नहीं होने दिया। अपनी लोकोत्तर महानता एवं पारमार्थिक परमोच्च स्थितिको उन्होंने सदा ही गुप्त रखा और अपने लोगोंपर भी बहुत कम व्यक्त होने दिया। वे जगत्में एक महान् उद्देश्य लेकर आये थे और भगवान्‌की ओरसे आह्वान होते ही आसक्तिशून्य हो, सब कुछ छोड़कर यहाँसे चल दिये। 'कल्याण' एवं 'कल्याण-कल्पतरु'के माध्यमसे, अनेकों बहुमूल्य पुस्तकोंद्वारा तथा दैनिक प्रवचन एवं विशेष अवसरोंपर व्याख्यान देकर उन्होंने भगवद्भक्ति, भगवत्प्रेम, भगवत्तत्त्व, लौकिक व्यवहार, राजनीति आदि विषयोंपर जो अद्भुत प्रकाश डाला है, वह जगत्के लिये अमूल्य सम्पत्ति बन गया है। 'कल्याण'के विशेषांकोंके रूपमें ही—जिन्हें अपने-अपने विषयके विश्वकोष कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी—वे इतने अमूल्य साहित्यका संग्रह कर गये हैं, जिससे भारतीय आर्य संस्कृतिके अद्वितीय महत्त्वको हृदयंगम करनेमें बड़ी सहायता मिलेगी। इस नास्तिकताके युगमें जबकि भौतिकवादका सर्वत्र बोलबाला है, 'कल्याण'-जैसा पत्र निकालकर उन्होंने पत्रकारिताके क्षेत्रमें अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की।

'कल्याण' एक विशुद्ध आध्यात्मिक पत्र है। 'कल्याण'के विकासमें परम श्रद्धेय श्रीभाईजीकी आध्यात्मिक स्थिति ही प्रधान हेतु रही है। उनका

जीवन भगवद्विश्वास, भगवद्भक्ति, ज्ञान एवं निष्काम कर्मका मूर्तिमान् आदर्श था। गीताके सोलहवें अध्यायमें वर्णित दैवी सम्पदाके गुण स्वाभाविक रूपसे उनमें प्रतिष्ठित थे। जो कुछ वे 'कल्याण'में लिखते थे, वह सब उनमें था। उनके पवित्र जीवन, पवित्र वाणी, पवित्र लेखनी,पवित्र दृष्टि,पवित्र विग्रहसे नित्य निरन्तर भगवद्रसकी विश्व-पावनी अखण्ड सुधा-धारा प्रवाहित होती रहती थी और वह जगत्के जीवोंको सहज ही अमृतत्व प्रदान करती थी। यही हेतु है कि 'कल्याण'का छोटा-सा पौधा सहज रूपमें विकसित होता हुआ जनता-जनार्दनकी सेवा कर रहा है। 'कल्याण'की सेवामें श्रद्धेय श्रीभाईजीने अपने जीवनका क्षण-क्षण तथा शरीरका कण-कण होम दिया था। वास्तवमें 'कल्याण' और श्रीभाईजी पर्याय हो गये थे।

श्रीभाईजी इस युगकी एक महान् विभूति थे। भारतीय संत-परम्परामें उनका बहुत ऊँचा स्थान था। वे 'ज्ञानोत्तर भाव-राज्य' में प्रतिष्ठित थे। जिस 'पराभक्ति'की प्राप्ति श्रीमद्भगवद्गीतामें ब्रह्मभूत होनेके बाद बतायी गयी है, जिस भक्तिके द्वारा मनुष्य भगवान्को तत्त्वसे जानकर उनमें प्रविष्ट हो जाता है, उनके साथ घुल-मिलकर एक हो जाता है, उनका प्रतिरूप ही बन जाता है, वह उनके अन्दर मूर्त थी। यही नहीं, श्रीकृष्णप्रेमकी उच्चतम भूमिकामें वे स्थित

थे। उनका मन, बुद्धि, वाणी—सब कुछ श्रीकृष्णमय हो गये थे। 'तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि, सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि, सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि'—नारद-भक्ति-सूत्रका यह वाक्य उनमें पूर्णरूपेण चरितार्थ था। विशुद्ध प्रेमाभक्तिका आदर्श एवं भगवन्नामकी महिमाको प्रतिष्ठित करनेके लिये ही जगत्में उनका आविर्भाव हुआ था। हमलोगोंका अनिर्वचनीय सौभाग्य था कि वे हमारे बीच हमारे निजजन—हमारे पिता, बन्धु, संरक्षक, मार्गदर्शक एवं मित्रके रूपमें इस धराधामपर रहे और हमारे-जैसे अगणित जीवोंको उन्होंने अपनी पीयूषवर्षिणी वाणी, आदर्श भक्तोचित व्यवहार, अमोघ लेखनी तथा भगवन्मय जीवनसे कल्याणकी ओर अग्रसर किया। इस भारतभूमिको—विश्वको उन्होंने अध्यात्मज्ञानकी जो अमूल्य निधि दी है, उसका मूल्याङ्कन शब्दोंद्वारा सम्भव नहीं है। सचमुच श्रीपोद्दारजी इस युगकी महान् विभूति हैं।

विशेष कार्यहेतु आविर्भूत श्रीपोद्दारजी

[श्रीजयदयालजी डालमिया]

भगवानके प्रेमी भक्तका स्मरण भगवत्प्रीति-प्रदायक होता है। प्रेमभक्तिके मूर्तिमान् स्वरूप भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके जीवनका मनन भगवान्के प्रति अहैतुकी प्रीतिका दान करनेमें समर्थ है। हम केवल ऐसा ही न समझ लें कि वे उच्चकोटिके योगभ्रष्ट जीवके रूपमें इस भूतलपर आकर अपनी कठोर साधनासे सर्वोच्च स्थितिको प्राप्त हो गये। वास्तवमें तो उनके आर्विभावके प्रयोजनका सच्चा आकंलन भी हमारे जैसे जीवोंके मन, बुद्धिके द्वारा सम्भव नहीं है। इस गूढ़ रहस्यको ही नहीं,अपितु अपनी साधनाकी स्थितिको भी अपने निकटतम रहनेवाले लोगोंसे भाईजीने गोपनीय बनाये रखा। इनके नित्यलीलामें लीन होनेके कुछ दिनों पूर्व इन्हींके शब्दोंमें इसका किञ्चित् संकेत मिलता है। सं० २०२६ आषाढ शु० ५ (२०-६-१९६९)के एक गोपनीय पत्रमें वे लिखते हैं—

"जिस कार्यके लिये पाञ्चभौतिक शरीरके माध्यमसे मुझे भेजा गया था, उनका वह कार्य पूरा हो गया।

जो कुछ मेरे द्वारा होना अभीष्ट था, वह हो गया। उसका फल निश्चय ही बहुत ही श्रेयस्कर 'उनके' इच्छानुसार हुआ है। पर वह क्या है, आगे क्या होगा,यह जाननेकी न मुझे आवश्यकता है, न इच्छा।"

—भाईजी : पावन स्मरण / पृष्ठ ५३६

इसी तरह उन्होंने अपने वसीयतनामेमें भी संकेत किया—

"वास्तवमें इस पाञ्चभौतिक शरीरसे अपने कर्मके अतिरिक्त मेरे द्वारा कुछ 'विशेष कार्य' करवानेकी योजना थी। उनकी कृपा एवं शक्तिसे उनका काम बहुत अंशमें पूरा हो गया। यद्यपि मैंने जितना चाहा था, जैसा चाहा था, वैसा नहीं हो पाया। यों तो जितने लोग मेरे सम्पर्कमें आये हैं, उनका कुछ-न-कुछ कल्याण तो अवश्य ही हुआ है और होगा···············।"

"यद्यपि जगत्के मङ्गलके लिये जो कुछ हुआ है, वह बहुत दूर-दूरतक हुआ है तथा उसका प्रभाव व्यापक तथा दीर्घकालतक रहेगा। 'वह क्या है, कैसा है'—यह न मैं पूरा जानता हूँ, न जाननेकी इच्छा है। हाँ, इतना जानता हूँ कि वह प्रभुका कार्य है और महान् है।"

अब इस 'विशेष कार्य'के सम्बन्धमें हम लोग अपने रज-तमाच्छादित मन, बुद्धिके द्वारा कितनी भी

कल्पना करें. फिर भी हम लोग उसका स्पर्श नहीं कर पायेंगे। उनका 'विशेष कार्य' वास्तवमें कल्पनातीत है।

एक ऐसे संत, जिन्होंने शास्त्रोंका गहरा अध्ययन किया और भाईजीको बहुत निकटसे लम्बे समयतक देखा, उन्होंने कहा—"आजतक इस पारमार्थिक स्थितिका वर्णन मैंने किसी शास्त्रमें नहीं पढ़ा है और चैतन्य महाप्रभुके सिवा किसी भी भक्तके जीवनमें इस स्थितिका संकेत प्राप्त नहीं होता। मैं यह नहीं कहता कि जगत्‌के इतिहासमें भाईजीका पहला उदाहरण है। ऐसे कुछ विरले महात्मा हुए होंगे, पर वह बात प्रकाशमें नहीं आयी और ऋषियोंने जान-बूझकर, मालूम पड़ता है, शास्त्रोंमें इस स्थितिका उल्लेख नहीं किया और कहीं हुआ भी हो तो मेरी दृष्टिमें नहीं आया।'

भाईजीके जीवनमें जिस सर्वोच्च स्थितिके दर्शन होते हैं, वह शब्दोंमें तो आ नहीं सकती। संकेत करनेके उद्देश्यसे शाखा-चन्द्र-न्यायके अनुसार उसे 'भाव समाधि' या 'भागवती स्थिति' या 'महाभावमयी स्थिति' कुछ भी संज्ञा दे सकते हैं। वह सर्वोच्च स्थिति उन्हें सहज प्राप्त थी। एक विशेष बात और—वे चाहते थे जबरदस्ती वृत्तिको 'इधर' रखकर सुचारु रूपसे भगवान्‌का कार्य सम्पादन करना और वह वृत्ति चली जाती थी बरबस 'उधर' (भाव राज्यमें)। भाईजी इस

स्थितिको सर्वथा अनिर्वचनीय और अचिन्त्य ही कहते थे। ऐसे तो बहुतसे संतोंके जीवनमें देखनेको मिलता है कि बिना किसी प्रयत्नके लीला-दर्शन होने लग जाय एवं स्वयं भी लीलामें सम्मिलित होकर रस लेने लगें, परंतु वृत्तियोंको सङ्घर्षपूर्वक यहाँ लगानेपर भी बलात् जब चाहे, तब १५, २० घण्टोंतक 'भाव-समाधि'की स्थिति अनायास हो जाना, ऐसा मेरे देखने-सुननेमें नहीं आया।

इसी गूढ़ रहस्यका एक छोटा-सा संकेत मिलता है नारद भक्ति-सूत्रकी व्याख्यामें। इन सूत्रोंकी व्याख्या भाईजीने अपनी साधनाकी प्रारम्भिक अवस्थामें शिमलापालमें लिखी, जब उनकी उम्र २५ वर्षकी थी। बादमें यही व्याख्या कुछ परिवर्तन-परिवर्धनके साथ 'प्रेम दर्शन' नामसे पुस्तकरूपमें गीताप्रेससे प्रकाशित हुई। इसमें उल्लेखनीय बात यह है कि शिमलापालमें तो भाईजीने अपनी साधना प्रारम्भ की थी; उस समय प्रेमाभक्तिकी ऐसी गहरी सैद्धान्तिक व्याख्या कैसे सम्भव हो पायी, जिसे अपने प्रौढ़ आध्यात्मिक जीवनमें भी वे उसी रूपमें अपनाये रहे और उसका आदर करते रहे। इससे यही संकेत मिलता है कि भगवान्ने जिस कार्यके लिये उनका चयन किया था, उसका श्रीगणेश सहजरूपसे जीवनके प्रारम्भ कालमें हो गया।

एक बात और ध्यान देनेयोग्य है इनकी सर्वोच्च स्थितिके बारेमें। उनके जीवनमें प्रगति एवं उत्थानके जो सोपान हैं, उनमें एक क्रम है और एक सहजता है। जिस भगवदीय दिव्य कार्यके लिये उनका अविर्भाव हुआ था, यदि वैसा ही दिव्य जीवन प्रारम्भसे ही सामने आ जाता तो वह हमारे लिये आदरणीय तो होता, पर अनुकरणीय नहीं। उसे पढ़-सुनकर पवित्र तो हो जाते, पर उसका अनुकरण करनेमें कठिनता आती। उस दिव्य जीवनको देखकर सहज ही मनमें यह बात आती कि हम ऐसे नहीं बन सकते। इसलिये भगवान्‌ने उनके माध्यमसे ऐसी जीवन-लीला प्रस्तुत की, जो पढ़-सुनकर पवित्र होनेके साथ ही परम अनुकरणीय भी है। उदाहरणार्थ, जब इन्होंने शिमलापालमें साधना प्रारम्भ की तो वे कहते थे कि ध्यानसे कई बार मन उचट जाता था, पर करीब ६ महीने बाद ही ध्यान होने लगा और चाहे जहाँ खुली आँखोंसे भगवान् विष्णुका श्रीविग्रह दिखायी देने लगा। ऐसे ही जीवनके समस्त व्यापार रहे। भाईजीकी जीवन-चर्या साधारण मानवकी भाँति रही। हँसनेवालेके साथ हँसे, रोनेवालेके साथ रोये। उनके वास्तविक स्वरूपकी कोई कल्पना भी नहीं कर सका, जैसे पत्थरोंके ढेरमें पारस पड़ा रहा। जो निकट सम्पर्कमें आये, वे अपने भावानुसार अनुभूति करते

रहे। किसीने उनको विद्वान्‌के रूपमें देखा, किसीने सेवापरायण, किसीने सुयोग्य सम्पादक, किसीने अपना आत्मीय स्वजन, किसीने आदर्श गृहस्थ, किसीने दानवीर, किसीने सच्चा संत, किसीने उच्चकोटिका व्रज-प्रेमी रसिक और किसी-किसी बिरलेको राधा-हृदयकी झाँकी उनके अन्दर मिली।

भाईजीने अपनी महानता कभी भी स्वीकार नहीं की। सचमुच वे एक प्रच्छन्न पारस-मणिके समान थे और जीवनके अन्तिम क्षणतक उन्होंने स्वयंको छिपाये रखा।

भारतीय महाप्राण श्रीपोद्दारजी

[डॉ॰ श्रीगोविन्ददासजी सेठ]

भारतीय संस्कृतिके सनातन प्रवाहमें जो निःस्पृह संत और जीवनमुक्त मनीषी हुए हैं, उन्हींकी शृङ्खलामें मैं भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके जीवनको देखता हूँ। वे गृहस्थ थे, संसारमें रहे, किंतु उनका सारा जीवन, उनके विचार, कर्तव्य और आदर्श एक ऐसे जीवनमुक्त संतके रहे हैं, जिसने अपने सर्वस्वको—अपने-आपको इस भगवत्सृष्टिरूपी भगवान्‌में सर्वथा लीन और विलीन कर दिया था और जिनका निजका कोई कर्तव्य और व्यक्तित्व नहीं रहा।

श्रीपोद्दारजीसे मेरा लगभग पचास वर्षका सम्बन्ध रहा है। अनेक ऐसे अवसर आये, जब मैंने उन्हें अत्यन्त निकटसे देखा। आध्यात्मिक-सांस्कृतिक कार्योंमें रुचि रखनेवाला एवं गो-सेवा-व्रती होनेके नाते मेरे लिये जब भी इस तरहके प्रसङ्ग आते, उनके साथ मेरा सम्पर्क और निकटता बढ़ जाती। उनके इस सम्पर्क और निकटताके क्षणोंमें मैंने सदा ही यह अनुभव किया कि वे भारतीय संस्कृतिके उन्नायक उन भद्रपुरुषोंमें हैं, जिनके विचार, वाणी और हर कृतिसे भारतीयताकी अमिट छाप मनपर पड़ती है। उनकी विनम्रता,

उनका मृदु व्यवहार, परायोंके प्रति भी आत्मीयताका भाव और सभीके साथ सहज सौजन्य—ये कुछ ऐसे विलक्षण गुण थे, जो उनके सम्पर्कमें आनेवालेको मुग्ध किये बिना नहीं रहते थे। उनका व्यक्तित्व सर्वाङ्गीण था। वे धर्मशास्त्रोंके ज्ञाता, धर्मके मर्मज्ञ और उद्भट विद्वान् थे। इसीके साथ उनका समूचा जीवन एक साधककी भाँति बीता। वे भक्तिमार्गके अनुयायी थे; श्रीराधा उनको परम आराध्या थीं और योगिराज श्रीकृष्ण उनके ज्ञान और कर्मके प्रेरक। इस प्रकार वे भक्ति, ज्ञान और कर्मके समुच्चय थे।

भारत-जैसे धर्मप्राण और कृषि-प्रधान देशमें गोहत्या एक राष्ट्रीय समस्या है। श्रीभाईजी गोहत्याको धर्मकी दृष्टिसे एक पाप मानते थे। गोहत्या-बंदीके प्रयत्नोंमें उनका सदा प्रथम श्रेणीका योग-दान रहता था। इतना ही नहीं, बहुत अर्थोंमें वे गोहत्या-बंदी आन्दोलनके एक प्रधान सूत्रधार थे। सन् १९४५ में उन्होंने 'कल्याण'का 'गो-अङ्क' प्रकाशितकर गो-संरक्षण और गो-संवर्धनके सम्बन्धमें प्रचुर साहित्य और दुर्लभ जानकारी देशको प्रदान की। 'कल्याण'का यह 'गो-अङ्क' न केवल गो-भक्तों, अपितु गो-संवर्धनके क्षेत्रमें कार्य करनेवाले सरकारी और गैर-सरकारी विशेषज्ञोंके लिए एक स्थायी 'ज्ञान-कोष' बन गया है।

श्रीपोद्दारजी भक्तिमार्गी थे और एक भक्त-हृदयके धनी होनेके नाते वे समस्त सृष्टिको भगवान्का ही स्वरूप—उनकी ही छवि-छटा मानकर उसकी सेवा करते थे। भक्तके जिन गुणों और कर्त्तव्योंका वर्णन हमारे धर्मग्रन्थोंमें मिलता है, पोद्दारजी उसके मूर्तिमन्त रूप थे। उन्होंने गुणोंको अपने व्यक्तित्वमें मूर्तिमान् किया था और कर्त्तव्योंको अपने कार्योंद्वारा आचरणमें उतारा था। यही हेतु है कि वे अतिशय विनम्र, निश्छल, निरभिमानी, अकिंचन और एक 'निमित्त' बनकर इस भगवद्रूप सृष्टिकी सेवामें अपनेको समर्पितकर अपने इष्ट भगवानकी इतनी सेवा कर सके। उनका हर आचरण हमारी संत-परम्पराका उदाहरण बन गया।

श्रीभाईजीका समस्त जीवन एक कर्मयोगीकी भाँति बीता। वे जीवनभर कर्ममें रत रहे, पर एक क्षणके लिये भी उसमें आसक्त नहीं हुए। उनकी दिनचर्यामें जहाँ एक ओर गीताप्रेसके प्रमुख प्रकाशनों एवं 'कल्याण'का सम्पादन, धर्म-ग्रन्थोंका स्वाध्याय एवं अनुशीलन, सत्सङ्ग और भगवत्सम्बन्धी प्रवचन आदि रहते थे, वहीं वे जगत्को तथा जगत्-व्यापारको सर्वथा विस्मरणकर भाव-समाधिमें लीन हो जाते थे। इस प्रकार वे नित्य नियमसे देह-धर्मका निर्वाह करते हुए भी उसके कर्मफलसे सदा मुक्त रहे। वे आत्मप्रशंसाके विरोधी और आत्मगोपी चरित्रके मूर्तिमान स्वरूप थे।

जीवनके प्रत्येक क्षणका सदुपयोग वे दूसरोंके हित-सम्पादनरूप भगवत्सेवामें करते रहे। यही हेतु है कि 'कल्याण' और गीताप्रेसके माध्यमसे लगभग पचास वर्षतक भारतीय धर्म, संस्कृति, भाषा और साहित्यकी इतनी विपुल और ऐसी बहुमुखी सेवाएँ वे सदा मूक भावसे करते रहे। प्रचार और प्रदर्शनके इस जमानेमें भाईजीका भारतीय धर्म, संस्कृति, भाषा और साहित्यके अभ्युत्थानमें यह योग-दान सर्वथा अनूठा है।

यह श्रीभाईजीकी साधनाका ही फल है कि 'कल्याण' मातृभूमिके आँचलमें फैले सुदूरवर्ती गाँवों और नगरोंमें रहनेवाली जनताकी धार्मिक श्रद्धा, आस्था और भगवद्भक्ति-पथकी साधनाका एक अवलम्बन बन चुका है। देशके ग्रामीण क्षेत्रमें बसनेवाले—आजकी परिभाषामें अशिक्षित माने जानेवाले किसान और नगरके कोलाहलपूर्ण जीवनमें रहनेवाले प्रबुद्ध नागरिक 'कल्याण'के माध्यमसे अपनी ईश्वरनिष्ठा और भगवद्भक्तिके लिये बल, प्रेरणा और स्फूर्ति ग्रहण करते हैं। पोद्दारजीके भक्त-हृदयकी अनुभूतियों तथा भगवानके स्वरूप और उनके अनुग्रहकी विविध झाँकियोंसे अलंकृत 'कल्याण'के इस योग-दानको शब्दोंमें नहीं सराहा जा सकता। वह तो देशकी धार्मिक जागृति और उसके अन्तःकरणका एक मर्म-बिन्दु बन चुका है, जिसके माध्यमसे भक्तिरसकी सरिता

प्रवाहित होती है और उसके मूल उद्गमपर पोद्दारजीका नाम और उनका साधनामय व्यक्तित्व बैठा है। श्रीपोद्दारजीने जीवनभर 'कल्याण'का सम्पादन ही किया हो, यह बात नहीं; वह तो उनकी अन्तःप्रवृत्तिकी प्रतिक्रिया है, उसका परिणाम है, उसकी अभिव्यक्ति। इसके अलावा उन्होंने आजीवन गीताप्रेस और उसके विविध धर्मग्रन्थोंके प्रकाशनों द्वारा तथा देशके विभिन्न स्थानोंमें भ्रमण करके एवं तीर्थस्थलोंमें जा-जाकर धर्मजागरणका जो महान् कार्य किया है, उसका हिसाब-किताब और मूल्याङ्कन करना कठिन है। अपनी लेखनी और वाणी—दोनों ही माध्यमोंसे उन्होंने भक्तिमार्ग और आस्तिक जगत्‌की जो सेवा की है, वह उनके चमत्कारी व्यक्तित्वकी एक अनूठी निधि है। जिन्होंने पोद्दारजीका साहित्य पढ़ा है, प्रवचनोंमें उनकी अमृत वाणी सुनी है, वे उनके इस चमत्कारी गुणसे परिचित हैं। पोद्दारजीके पचास वर्षके कर्मठ जीवनने धार्मिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक जगत्‌को इतना बल दिया है कि उसपर न केवल हम, अपितु हमारी पिछली और अगली पचास पीढ़ियाँ भी गर्व और गौरव अनुभव कर सकती हैं।

रसाद्वैत-दर्शन और श्रीपोद्दारजी

[श्रीश्यामसुन्दरजी दुजारी]

परम प्राप्तव्य परमात्म-तत्त्व सर्वथा अनिर्वचनीय है। वह सर्वमय, सर्वातीत, सर्वगुणमय, सर्वगुणातीत, अनन्त, अचिन्त्य, युगपत् परस्पर-विरुद्धगुणधर्माश्रय स्वरूप है। वह निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार, सगुण-साकार भी है तथा इन सबसे परे भी है। इसी तत्त्वको अति प्राचीन कालसे हमारे ऋषि-महर्षियोंने, आचार्योंने, मनिषियोंने अपने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणसे देखा है। उनके दृष्टिकोणको ही 'दर्शन' या मतकी संज्ञा दी गयी। इनमें प्रधान हैं—श्रीशंकराचार्यका अद्वैतवाद, श्रीरामानुजाचार्यका विशिष्टाद्वैतवाद, श्रीमध्वाचार्यका द्वैतवाद, श्रीनिम्बार्काचार्यका द्वैताद्वैतवाद, श्रीवल्लभाचार्यका शुद्धाद्वैतवाद और श्रीचैतन्य महाप्रभुका अचिन्त्यभेदाभेदवाद। मत और सम्प्रदाय तो और भी हैं और उनकी गणना करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है।

इन महान आचार्यों की परम्परा में रस-सिद्ध-संत श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार भी परिगण्य हैं। चैतन्य महाप्रभुने अपने जीवनकालमें किसी मतका प्रवर्तन नहीं किया था। ऐसा ही हुआ श्रीपोद्दारजीके जीवनमें

भी। श्रीपोद्दारजीने किसी मतका प्रवर्तन तो नहीं किया, अवश्य ही उनके सिद्धान्तोंका स्पष्ट संकेत उनकी कृतियोंमें परिव्याप्त है। श्रीपोद्दारजीके व्यक्तित्वमें एक प्रबल आकर्षण तथा विलक्षण सम्मोहन था, जिससे जो भी उनके निकट सम्पर्कमें आया, वह उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका।

बंगालके सुप्रसिद्ध संत श्रीसीतारामदास ओंकारनाथजी महाराजने लिखा—"श्रीपोद्दार बाबाके शरीरके आश्रयसे हमारे प्रभुने जो अपूर्व शास्त्र-प्रचार एवं धर्म-प्रचारकी लीला की है, वह न कभी हुई है और न होगी। ऐसे संतके चरणोंमें मस्तक अपने आप नत हो जाता है। श्रीभगवानके धर्म-प्रचारके अनुपम यन्त्र श्रीपोद्दार बाबा थे—उनके हृदयपर अधिकार करके श्रीभगवान स्वयं ही कार्य कर रहे थे, उनके भीतर और बाहर श्रीभगवान ही विद्यमान थे।...... इस प्रकारका शास्त्र-प्रचार एवं धर्म-प्रचार देहाभिमानी द्वारा नहीं हो सकता"।

महामहोपाध्याय डा० गोपीनाथजी कविराज लिखते हैं—

"मेरी धारणा है कि वे 'श्रीकृष्ण-रस-भावित-मति' थे। उसी भावनाके रसमें निरन्तर निमग्न रहकर वे जगतके सभी कार्य करते थे।"

श्रीवसन्त कुमारजी चट्टोपाध्यायने लिखा—

"जिन असंख्य महापुरुषोंने भारतमें जन्म लिया, उनमेंसे वाल्मीकि, व्यास, शंकर, रामकृष्ण.....आदि कुछ चुने हुए महापुरुषोंकी सूचीमें हम भव्य प्रकाश युक्त नक्षत्ररूप महात्मा हनुमानप्रसादजी पोद्दारको सम्मिलित कर सकते हैं।"

आचार्य तुलसी लिखते हैं—

"मेरी मान्यताके अनुसार वैदिक धर्मकी बहुमुखी सेवा करनेवाले ऐसे व्यक्ति आसपासकी शताब्दियोंमें विरल ही हुए हैं।"

डा० बलदेव प्रसादजी उपाध्यायने लिखा—

"श्रीपोद्दारजीको मैं आधुनिक युगका 'महाप्रभु चैतन्य' मानता हूँ।"

श्रीपरमहंसजी महाराज लिखते हैं—

"जैसे देवर्षि नारद, सनकादिक, दत्तात्रेय, शुकदेव, मैत्रेय, मनु प्रभृति ऋषि-मुनि तथा शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, गोरखनाथ, भर्तृहरि, तुलसीदास, ज्ञानदेव, समर्थ रामदास, रामकृष्ण परमहंस आदि

महापुरुषोंको समय-समयपर जगतमें भेजकर भगवानने धर्म-कर्म-परम्पराकी रक्षा की, उसी क्रममें पोद्दारजीको भी घोर कलिकालमें भेजकर भगवानने धर्म एवं संस्कृतिकी रक्षा करवायी है।"

'भाईजी : पावन-स्मरण' ग्रन्थसे ये थोड़ेसे अंश उद्धृत करनेका प्रयोजन इतना ही है कि विभिन्न वर्गोंके उन संत महानुभावोंकी विचारधाराका किंचित् परिचय मिल सके और झीनी-सी झलक मिल सके श्रीपोद्दारजीके परम संतत्वकी। इन महानुभावोंने शंकर, रामानुज, चैतन्य आदिकी परम्परामें श्रीपोद्दारजीकी परिगणना करके उनके अद्भुत व्यक्तित्व एवं महान कृतित्वका ही अभिनन्दन किया है।

श्रीपोद्दारजी द्वारा रचित एवं सम्पादित अनेक ग्रन्थ हैं और उन ग्रन्थोंमें उनके दार्शनिक विचार पढ़नेको मिलते हैं, परंतु उनके तीन मुख्य ग्रन्थ – 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन', 'गीता-चिन्तन' तथा 'पद-रत्नाकर'में विशेष रूपसे इनका वर्णन और विवेचन हुआ है। 'कल्याण'के वर्ष ६१ के सातवें अंक (जुलाई सन् १९८७ ई०)में 'रसाद्वैत' तथा वर्ष ६२ के तीसरे अंक (मार्च सन् १९८८ ई०)में 'रसाद्वैतमें भाव देह' नामसे उनके लेख प्रकाशित हुए हैं, जिससे उनके विचार स्पष्ट रूपसे सामने आये हैं। उनके 'रसाद्वैत-

दर्शन'को सही रूपमें हृदयंगम करनेके लिये उनके सभी ग्रन्थोंका गम्भीर अध्ययन आवश्यक है। भगवत्प्रेमकी परमोच्चावस्थाको ही वे रसाद्वैतकी स्थिति मानते हैं। वे लिखते हैं—

"अपनेको और भगवानको यथार्थरूपसे जाननेके बाद ही यथार्थ प्रेम होता है, परंतु यथार्थ रूपसे जानना भी प्रेमके बिना सम्भव नहीं। इस ज्ञान और प्रेममें परस्पर साध्य-साधन-सम्बन्ध है। पहले कुछ ज्ञान होनेपर प्रेम होता है, प्रेम होनेपर यथार्थ ज्ञान होता है और यथार्थ ज्ञानके अनन्तरका जो परमप्रेम है वही सर्वोच्च प्रेम है। उसी प्रेमको भक्तोंने 'रसाद्वैत' कहा है। यहाँ प्रेमी और प्रेमास्पदकी एकता हो जाती है। परस्पर दोनों एक दूसरेमें घुल मिल जाते हैं।"

—गीता चिन्तन/पृष्ठ—५६२

इसके पश्चात् प्रेमी और प्रेमास्पदकी द्वैतके रूपोंमें जो अवस्थिति रहती है, मात्र लीला-रसास्वादनके लिये होती है। भक्तिके आचार्य श्रीरामानुजादि सभी महानुभाव बद्धावस्थामें ही नहीं, अपितु मुक्तावस्थामें भी जीवकी भगवानसे अभिन्नता नहीं मानते। ऐसी ही मान्यता श्रीपोद्दारजीकी भी है। वे लिखते हैं—

"जीवन्मुक्त महात्मा परमार्थ दृष्टिसे तत्त्वज्ञानमें ब्रह्मके समान हो सकते हैं, जगत्-प्रपञ्चको लाँघकर आनन्दमय बन सकते हैं, परंतु मायाधीश कभी नहीं हो सकते। जगत्का सृजन, पालन और संहार करनेकी शक्ति केवल एक नित्यसिद्ध परमेश्वरमें ही है। इसीसे यहाँतक कहा जा सकता है कि जीव ब्रह्म हो सकता है, परंतु परमेश्वर या भगवान् नहीं हो सकता।"

—गीता चिन्तन/पृष्ठ–४३७

दूसरे स्थानपर वे कहते हैं—

डूब्यौ प्रेम-पयोधिमें, भयो प्रेमको रूप।
रसाद्वैत याकौं कहत, रहत न भिन्न सरूप॥
प्रेम हरी, हरि प्रेम है, प्रेमी प्रियतम आप।
जहाँ प्रेमको बास, तहँ रहे न जगको ताप॥

—पद-रत्नाकर/पृष्ठ–४१२

ये दोनों ही परस्पर विरोधी तथ्य नहीं है। यहाँ प्रेमी (जीव) और प्रियतम (भगवान्) की तात्त्विक एकता नहीं, अपितु यह तो लीला-रसास्वादनके लिये एक अनिर्वचनीय अभिन्नता है, जो सर्वथा अनुभवकी वस्तु है। श्रीपोद्दारजीके अनुसार प्रेम और परमात्मामें कोई अन्तर नहीं। जिस प्रकार वाणीसे ब्रह्मका वर्णन असम्भव है, उसी प्रकार वाणीद्वारा प्रेमका वर्णन भी नहीं हो सकता। हृदयमें जिस घनीभूत आनन्दका

अनुभव होता है, उसका वर्णन वाणी कभी कर ही नहीं सकती। प्रेमका जो वर्णन मिलता है, वह केवल सांकेतिक मात्र है। प्रेममें डूबा हुआ प्रेमी सर्वत्र अपने रसमय प्रियतमको ही देखता है। आँखें अहर्निश सम्पूर्ण विश्वको श्याममय देखती हैं। जो महानुभाव इस दिव्य रस-पथके पथिक नहीं हैं, उनके लिये यह भावावेश हो सकता है, पर जो महाभाग इस मार्गपर अग्रसर हुए हैं और जिन्हें सिद्ध-स्थितिकी उपलब्धि हुई है, उनके लिये यह भावावेश न होकर सतत प्रत्यक्ष परम सत्य है।

श्रीपोद्दारजीने अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें जो वसीयतनामा लिखा, उसमें उन्होंने लिखा है—"महान् आचार्य श्रीशंकराचार्य तथा भगवान् श्रीचैतन्यदेवसे मुझे सर्वाधिक लाभ प्राप्त हुआ है।" ऐसा लगता है कि श्रीशंकराचार्यका अद्वैत ही श्रीचैतन्यदेवकी सरसतामें संसिक्त होकर श्रीपोद्दारजीके 'रसाद्वैत'के रूपमें आविर्भूत हो उठा है। जिनसे वे सर्वाधिक प्रभावित हुए, उन्हीं दोनोंके मतसे उन्होंने अपने रसाद्वैतकी परिपुष्टि की। अपने विचारोंको प्रस्तुत करनेके लिये श्रीपोद्दारजीने कभी खण्डन-मण्डनकी प्रणाली अपनायी ही नहीं। भक्तिके जितने भी आचार्य हुए हैं, प्रायः सभीने अपने मतकी पुष्टिके लिये श्रीशंकराचार्यके अद्वैतवादका खण्डन किया है, परंतु

श्रीपोद्दारजीकी प्रतिपादन शैली इन सभी आचार्योंसे सर्वथा भिन्न है। श्रीपोद्दारजीने अपनी मान्यताओंकी स्थापना करते समय किसी भी आचार्यके मतका खण्डन किया ही नहीं, यहाँतक कि उन्होंने आचार्य श्रीशंकरके अद्वैतका भी खण्डन नहीं किया, अपितु एक बड़ा अद्भुत तथ्य यह है कि उनके अद्वैतको स्वीकृति प्रदान करते हुए अपने रसाद्वैतका मण्डन किया है। अपने मतके मण्डनकी यह प्रणाली श्रीपोद्दारजीके महान् व्यक्तित्वकी अद्भुत विशिष्टता है। दूसरे शब्दोंमें यह कहा जा सकताहै कि 'रसाद्वैत'में श्रीपोद्दारजीने अद्वैतपथ एवं भक्तिपथके आचार्योंके मतोंका समन्वय किया है। यह समन्वय-पद्धति श्रीपोद्दारजीकी निजी विशेषता थी, जिसका दर्शन अन्य मत-परिपोषण-पद्धतिमें प्रायः नहीं मिलता।

श्रीपोद्दारजीने विभिन्न मतोंमें जो समन्वय प्रदर्शित किया, उस समन्वयात्मक प्रणालीके पीछे एक प्रयोजन है। वह प्रयोजन है विभिन्न स्तरके जीवोंका हित-चिन्तन। पूर्वाचार्योंने जो कुछ भी कहा, वह अपने अनुभवके आधारपर कहा और कहा माया-बद्ध जीवोंके कल्याणके लिये। पूर्व जन्मोंकी विभिन्न कर्मराशिके कारण जीवोंके स्वभावमें भिन्नता होती है और विभिन्न स्वभावके जीवोंके लाभके लिये विभिन्न आचार्योंद्वारा उपदिष्ट मत उपादेय भी है। यही कारण

है कि श्रीमद्भगवद्गीताके अगणित भाष्य और टीकाएँ हुई हैं और अद्यावधि होती ही जा रही हैं। रुचिकी यह भिन्नता ही विभिन्न साधन-पद्धतियोंके प्रवर्तन एवं प्रचलनका हेतु है। अनन्त जन्मोंके संस्कारोंके फलस्वरूप जीवकी विषयासक्ति अति सुदृढ़ हो गयी है, इसीसे वह जन्म-जन्मान्तरमें दुःख भोगता रहता है। श्रीपोद्दारजीने अनुभव किया कि दुःख-दोष देखकर जीवके लिये विषयासक्ति छोड़ना इतना सहज नहीं है, जितना उसके लिये किसी सरस वस्तुको पकड़ लेना। यदि वह भगवत्प्रेमकी सरस साधना-पद्धतिकी ओर अग्रसर हो और उसे कुछ रस उसमें आने लगे तो विषयोंको छोड़ना उसके लिये अति सरल हो जायेगा। श्रीपोद्दारजीके रसाद्वैत सिद्धान्तके अनुसार साधक प्रारम्भसे ही रसानुभव करते हुए साधन पथपर आगे-से-आगे बढ़ता चलता है। ब्रह्मका स्वरूपभूत आनन्द बड़ा रुक्ष रह जाता है, यदि उनकी आनन्दमयी आह्लादिनी शक्ति उन्हें आनन्दित करनेमें प्रवृत्त न हो। यह रसाद्वैत सर्वथा श्रुति-पुराण सम्मत है।

'रसब्रह्म'की रहस्यमयी चर्चा करती हुई श्रुति कहती है—

यद्वै तत्सुकृतं रसो वै सः। रसꣳ ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दीभवति।

(तैत्तिरिय उप० २/७/२)

'जो स्वयं कर्ता-स्वयंरूप तत्त्व है, वही रस है—पूर्ण रसस्वरूप है। उस रसरूपको प्राप्त करके जीव आनन्दयुक्त होता है।'

यह 'रसब्रह्म' ही लीलापुरुषोत्तम है। रसरूप भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं गीतामें घोषणा की—

'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्'।

ब्रह्माण्डपुराणमें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

राधा कृष्णात्मिका नित्यं कृष्णो राधात्मको ध्रुवम्।
वृन्दावनेश्वरी राधा राधावाराध्यते मया।।

'राधाकी आत्मा सदा मैं श्रीकृष्ण हूँ और मेरी (श्रीकृष्णकी) आत्मा निश्चय ही राधा है, इस कारण मैं राधाकी आराधना करता हूँ।

अपने ग्रन्थ 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन'में श्रीपोद्दारजीने विस्तारसे समझाया है कि वस्तुतः श्रीकृष्ण, श्रीराधा श्रीगोपांगनासमूह एवं उनकी मधुरतम लीलाओंमें कोई भेद नहीं है। वे स्वयं ही आस्वाद्य, आस्वादक और आस्वाद बने हैं। उनकी विभिन्न लीलाएँ रस-समुद्रकी तरंगें हैं। साधक भाव-देहकी साधनाद्वारा इस लीला-राज्यमें प्रवेश

करता है और इस लोकोत्तर लीला-सिन्धुमें अवगाहन करके परमानन्दमें निमग्न हो जाता है। इस लीला-विलासमें सम्पूर्ण रूपसे तन्मय एवं तल्लीन होनेके बाद जो एकात्मता होती है; वह जीव-ब्रह्मके अभेदावस्थावाली स्थितिके समान नहीं है। यहाँ नित्य एक होकर भी नित्य दो बने रहते हैं। दो होते हुए भी 'एक' अनुभव करना और एक होकर भी दो होना, ऐसी अनुभूति केवल साधन-सिद्ध साधककी ही नहीं होती, अपितु स्वयं श्रीकृष्णाह्लादिनी शक्ति श्रीराधाके जीवनमें भी इस अद्भुत भाव-छविके दर्शन होते हैं। उनके दो उद्गार मननीय हैं। अपने प्रियतम श्रीकृष्णसे वे कहती हैं—

"मैं अपराधिनि, अघी, कलंकिनी
हूँ निश्चय ही सभी प्रकार"
(पद-रत्नाकर/पद—६२५)

वे ही पुनः अपने प्राणाराध्यसे कहती हैं—

"प्रेमी प्रेम, परम प्रेमास्पद—नहीं ज्ञान कुछ हुए विभोर।
राधाप्यारी हूँ मैं, या हो केवल तुम प्रिय नन्दकिशोर॥
(पद-रत्नाकर/पद—५९६)

इस रसभावाद्वैतकी स्थिति मानवीय बुद्धिके लिये

गम्य है ही नहीं। इसकी अनुभूति तत्त्वदर्शनके बाद श्रीयुगलसरकारकी कृपासे ही संभव हो सकती है।

इसकी उपासना-पद्धतिका 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन'में विस्तारसे वर्णन है। स्थानाभावसे यहाँ उसका विवेचन संभव नहीं है। एक पदमें सांकेतिक वर्णन है, वह दिया जा रहा है--

प्रथम साधना है इसकी—इन्द्रिय भोगोंका मनसे त्याग।
हरिकी प्रीति बढ़ानेवाले सत्कर्मोंमें अति अनुराग॥
कठिन काम-वासना-पापका करके पूरी तरह विनाश।
दम्भ-दर्प अभिमान-लोभ-मद,क्रोध-मानका करके नाश॥
परचर्चाका परित्यागकर,विषयोंका तज सब अभिलाष।
मधुमय चिन्तन नाम-रूपका मनमें प्रभुपर दृढ़ विश्वास॥
हरिगुणश्रवण मनन लीलाका, लीलारसमें रति निष्काम।
प्रियतम-भाव सदा मोहनमें,प्रेम-कामना शुचि,अभिराम॥
सर्व-समर्पण करके हरिको, भोग-मोक्षका करके त्याग।
हरिके सुखमें हो सुख सारा; हरिचरणोंमें ही अनुराग॥
भोग-मोक्ष-रुचि-रहित परम जो अन्तरंग हरिप्रेमी संत।
उनका विमल संग उनकी ही रुचिमें निज रुचिका कर अंत
पावन प्रेमपंथके साधक करते फिर लीला-चिन्तन।
श्यामा-श्याम-कृपासे फिर वे, कर पाते लीला-दर्शन॥

गोपीभाव समझकर फिर वे, होते हैं शुचि साधन सिद्ध।
रस-साधनमें सिद्धि प्राप्तकर पाते गोपीरूप विशुद्ध॥
तब लीलामें नित्य सम्मिलित हो बन जाते प्रेमस्वरूप।
परम सिद्धि यह प्रेम-पंथकी, यही प्रेमका निर्मल रूप॥
(पद-रत्नाकर/पद–७०९)

साधन-जगत्में श्रीपोद्दारजीने उत्तरोत्तर विलक्षण चार राज्य माने हैं— १–कर्मराज्य, २–भावराज्य, ३–ज्ञानराज्य और ४–महान् परम भावराज्य। कर्मप्रवण पुरुष कर्मराज्यमें श्रौत - स्मार्त वैध कर्मोंकेद्वारा कर्म-साधन करते हैं। वे सर्वथा कामनारहित होनेपर 'नैष्कर्म्यसिद्धि'को प्राप्त होते हैं। इससे आगे 'भावराज्य' है, जहाँ भक्तिकी प्रधानता होती है। इसमें भावसाधनाके द्वारा अपने भावानुरूप इष्टदेव और उनके दिव्य लोकोंको प्राप्त करते हैं। ये भी सर्वथा मायामुक्त होते हैं।

इससे आगे ज्ञानराज्य है। इसमें विचार-प्रधान पुरुष साधन-चतुष्टयादिके द्वारा महावाक्योंका अनुसरण करके विशुद्ध आत्मस्वरूपमें परिनिष्ठित होते हैं। इनके प्राणोंका उत्क्रमण नहीं होता। ये ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं या ब्रह्मसायुज्य प्राप्त करते हैं। जीवनकालमें भी बोध होते ही जगत्का अत्यन्ताभाव हो जाता है और सम्यक् बोध होनेके कारण अविद्याके अध्यासका

सर्वथा अभाव होनेसे जीव जीवभावसे मुक्त होकर दूसरोंकी दृष्टिमें शरीर बने रहनेपर भी जीवन्मुक्त हो जाता है। यही ज्ञान है। श्रीशंकराचार्यके अद्वैत मतमें यही सर्वोपरि स्थिति है।

इससे आगे एक महाभावरूप 'भगवद्भाव-राज्य' है। भुक्ति-मुक्ति, कर्म-ज्ञान आदिकी वासनासे शून्य पुरुष ही इस परम 'भावराज्य'के अधिकारी होते हैं। श्रीपोद्दारजीके अनुसार ब्रह्म-तत्त्वका साक्षात्कार होनेपर वह 'ब्रह्मज्ञानी' जीवन्मुक्त तो हो जाता है पर इतनेसे वह भगवान्‌के—'वे जो जैसे जितने हैं'—('यावान् यश्चास्मि' गीता—१८/५५) उस स्वरूपको तत्त्वसे ठीक-ठीक नहीं जान पाता। तत्त्वज्ञानी मुक्त पुरुषोंमें भी किन्हीं-किन्हींमें भगवत्प्रेमांकुरका उदय हो जाता है, जिससे वे दिव्य शरीरके द्वारा उपर्युक्त कर्म-भाव-ज्ञान-राज्यसे अतीत भगवद्भावराज्यमें प्रवेश करके प्रियतम भगवान्‌के साथ लीला-विहार करते हैं या उनकी लीलामें सहायक-सेवक होकर उनके सुखमें ही अपने भिन्न स्वरूपको विसर्जित कर नित्य सेवा-रत रहते हैं। यह वह राज्य है, जहाँ मोक्षका भी संन्यास हो जाता है।

श्रीपोद्दारजीके अनुसार इस विलक्षण महाभावरूप दुर्लभ राज्यमें भोग-मोक्षकी कामनाके गन्धलेशसे

शून्य, सर्वात्मनिवेदनकारी महानुभावोंका ही इसमें प्रवेश होता है, चाहे वे पवित्र त्यागमय प्रेमस्रोतमें बहते हुए सीधे ही यहाँ पहुँच जायँ अथवा उपर्युक्त ज्ञानराज्यमें ज्ञान प्राप्त होनेके अनन्तर किसी महान कारणसे। इस राज्यमें नित्य निरन्तर सच्चिदानन्दघन प्रेमरस-स्वरूप श्रीराधाकृष्णका नित्य लीला-विहार होता रहता है।

श्रीराधाकृष्णकी उपासनाके क्षेत्रमें अबतक अनेक मतोंकी प्रतिष्ठा हुई है। मधुर भावकी उपासना प्रणालियोंमें युग-प्रभावसे अथवा अन्य कारणोंसे मधुरोपासनाके नामपर अनेक प्रकारकी अभद्रताओंका प्रवेश हो गया। इन अभद्रताओंसे बड़ी हानि हुई, वह हानि चाहे व्यक्तिगत जीवनमें हुई हो अथवा सामुदायिक जीवनमें। रस-शास्त्र एवं दर्शनशास्त्रकी दृष्टिसे सम्मत श्रीपोद्दारजीके 'रसाद्वैत'के सिद्धान्तोंने केवल मति-भ्रम ही दूर नहीं किया, अपितु श्रीराधा-कृष्णके उज्ज्वलतम प्रेमका दर्शन कराया, जिसकी वर्तमान युगमें अत्यन्त आवश्यकता थी। इसीसे व्रज-साहित्यके मर्मज्ञ डॉ॰ प्रभुदयाल मीत्तलने लिखा है कि श्रीपोद्दारजीकी रचनाओंमें इस विषयका जैसा मर्मस्पर्शी कथन हुआ है, उससे व्रजके बड़े-से-बड़े विद्वानको भी अब नूतन प्रकाश मिलेगा।

महज्जनोंकी दृष्टिमें श्रीपोद्दारजी

भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार तो भगवद्धामसे आये थे और वहीं चले गये। श्रीभाईजीके प्रत्यक्ष दर्शन तो नहीं हुए, परन्तु उनके द्वारा लिखित साहित्य पढ़ा है। हिन्दू धर्म एवं हिन्दू जातिके लिये वे जो कर गये हैं, उसके लिये वे सदा स्मरण किये जायेंगे।

—पूज्य श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज

श्रीपोद्दारजी रसोपासनाके एक सरस स्रोत थे। वे भक्तोंकी रहनीके आदर्श थे। उनके सरल एवं सरस जीवनको देखने मात्रसे भावजगतमें लोग प्रवेश कर जाते थे। श्रीराधाष्टमीका ऐतिहासिक महोत्सव जिसने देखा होगा, उसको ज्ञात होगा कि वे कितने उच्चकोटिके महापुरुष थे। श्रीराधाष्टमीके महोत्सवका दर्शन मैंने भी गोरखपुर स्थित गीतावाटिकामें किया है। उस दिन वहाँ साधारण जीव भी आनन्द-राज्यमें प्रवेश कर श्रीराधाभावका दर्शन कर लेता था। धार्मिक जगत्में सरस भक्ति—श्रीराधाभावका वितरण उन्होंने जिस उदारतासे किया, उसका दूसरा उदाहरण अब दुर्लभ है।

—स्वामी श्रीसीतारामशरणजी महाराज

भाईजीके साथ मेरा जो दीर्घ कालका स्नेह-सम्बन्ध रहा है, वह मेरी स्मृतिके मणि-कक्षमें आज भी उज्ज्वल रूपमें विराजमान है। 'हनुमानप्रसाद पोद्दार'

एक नाम मात्र नहीं, वस्तुतः एक महान आदर्शका प्रतीक है। भाईजीकी साधना जीवनके प्रथम चरणमें ही आरम्भ हो गयी थी। उसीसे स्फूर्ति ग्रहणकर असंख्य कल्याण-व्रतोंमें अपनेको सर्वदा व्यापृत रखकर उन्होंने अपने अन्तरंग जीवनके सामान्य क्रमको लोक-नेत्रोंसे अलक्ष्य एवं अत्यन्त संगोपित रखा। मेरी धारणा है कि वे 'श्रीकृष्ण-रस-भावित-मति' थे। उसी भावनाके रसमें निरन्तर निमग्न रहकर वे जगत्‌के सभी कार्य करते रहे।

—महामहोपाध्याय पूज्य श्रीगोपीनाथजी कविराज

श्रीभाईजी केवल जन्मसे वैश्य थे, आचार-विचारमें वे ब्राह्मण थे तथा उत्साहमें राजर्षि। वे रागानुगा तथा दास्य भक्ति—दोनोंके मानो आचार्य ही थे।

—आचार्य श्रीयमुनावल्लभजी गोस्वामी

मैंने अपने 'भागवत-सप्ताह-प्रवचन'के अवसरपर गोरखपुरमें आपके (श्रीपोद्दारजीके) शरीरमें अष्ट सात्त्विक भाव 'कम्प-अश्रु-पुलकादि'को स्वभाविक रूपसे देखा है। श्रीपोद्दारजी जैसी विभूतियोंका आर्विभाव श्रीहरिके संकल्पसे ही होतामें है। जगत्‌में सेवा-कार्य कराके श्रीरासेश्वरीजूने उन्हें अपनी निजी सेवामें बुला लिया।

—पुराणाचार्य श्रीश्रीनाथजी शास्त्री

श्रीभाईजी तो प्रेममें श्रीराधारानी थे, उदारता आदि गुणोंमें वे श्रीराम थे, भोलेपनमें सदाशिव थे अणुसे लेकर महान पर्यन्तको जाननेवालोंमें वे वशिष्ठ थे, भक्तिमें वे भरत थे और सत्यपर दृढ़ रहनेवालोंमें वे हरिश्चन्द्र थे। मेरा मन कहता है कि श्रीभाईजीका वपु समस्त देवगणोंके गुणोंका एक पुञ्ज था।

—श्रीकपीन्द्रजी महाराज

जब-जब मुझे उनकी स्मृति होती है, मैं एक पवित्र स्नेह-ज्योतिके, प्रेमस्वरूप श्रीजानकी-रमणके पादपद्मकी अनुरागमयी ज्योतिके, महारासरसिक श्रीराधारमणकी भाव-परिपूरित भक्तिकी ज्योतिके दर्शन करता हूँ।

—श्रीकृपाशंकरजी रामायणी

वे (श्रीभाईजी) महापुरुष नित्य गोलोक विहारीके निजी परिकर थे।

—श्रीसुदर्शन सिंह 'चक्र'

नारदजीने भक्ति-तत्त्वका विवेचन करते हुए जिन व्रजगोपियोंके प्रेमका उदाहरण दिया है—पूज्य श्रीभाईजी उसी श्रीराधा-माधव-प्रेम-तत्त्वके मूर्त रूप थे।

श्रीनारायणप्रसादजी शर्मा

महापुरुषोंका चरित्र-गान एक तीर्थ-यात्रा है। श्रीभाईजीका सारा जीवन ही—उनका उठना-बैठना, सोना-जागना, सभी प्रभुको समर्पित था।

—श्रीलक्ष्मीपतिजी सिंहानिया

वास्तवमें, उनमें कुछ दैवी शक्ति थी, जिससे उनकी आकृति अत्यन्त प्रभावकारी और आकर्षक दिखायी पड़ती थी। जो भी व्यक्ति उनकी ओर देखता था, वह अति सम्मान और श्रद्धासे उनके सामने नत हुए बिना नहीं रह सकता था।

—श्रीगजानन्दजी खेतान

एक आर्य-समाजी होनेके नाते बचपनमें मुझे भाईजीके लिये जरा भी आकर्षण नहीं था। एक बार सुना, उनकी टोली कीर्तन करनेवाली है। लड़कपन तो था ही, सोचा—चलो तमाशा देख आयें, लेकिन उस तमाशेका ऐसा गम्भीर प्रभाव पड़ा कि आज पैंतीस-चालीस वर्षके बाद भी भाईजीकी मुद्राको भुलाया नहीं जा सकता। कीर्तन क्या था, अमृत-वर्षा थी।

—श्रीरवीन्द्रजी

श्रीपोद्दारजीकी चाल-ढाल, कथा-वार्ता, मधुर मुस्कान, शान्त नेत्रोंकी सुस्निग्ध दृष्टि—प्रत्येक गति-विधिके द्वारा ब्रज-प्रेमकी एक अपार्थिव धारा प्रवाहित

होती थी। इस युग-संधि-कालमें वे थे भक्तावतार।

डा० महानामव्रतजी ब्रह्मचारी

वे भगवदाकार होकर औरोंके लिये मोक्ष-प्रणाली प्रशस्त कर गये हैं।

—श्रीगिरधारीलालजी मेहता

मेरी मान्यता है कि जिस प्रकार तुलसीदासजी जगत्में रामनाम वितरण करनेके लिये आये थे, उसी प्रकार इस बीसवीं शताब्दीकी अनास्थाके अन्धकारमें भाईजी अध्यात्म एवं भक्तिभावके प्रचारके लिये आये थे। उनकी तुलना चैतन्य, कबीर, नानक आदि महापुरुषोंके साथ की जा सकती है, जिन्होंने युगके प्रवाहको मोड़ दिया और भक्ति-भाव तथा ज्ञान-वैराग्यकी धारा बहा दी थी।

—श्रीराधाकृष्णजी

मेरा तो विश्वास है कि वे मध्ययुगीन प्रेमी संत श्रीश्रीचैतन्यदेवके ही नवीन संस्करण थे। जिन लोगोंको आजसे प्रायः ४०० वर्ष पूर्व प्रकट हुए श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुके दर्शन एवं नाम-कीर्तनके श्रवणका सौभाग्य नहीं मिला था, वे इस युगमें प्रेममूर्ति श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके दर्शन तथा प्रवचनकी पीयूष-वर्षासे परितृप्त हुए हैं।

—डा० श्रीतपेश्वरनाथजी

श्रीपोद्दारजीको मैं आधुनिक युगका 'महाप्रभु चैतन्य' मानता हूँ। चैतन्यके समान ही वे स्वयं सच्चे महाभागवत होनेके अतिरिक्त जनतामें भगवन्नामके वितरणमें सतत जागरूक थे।

—डा० श्रीबलदेवप्रसादजी उपाध्याय

जगत्‌में धर्मका प्रकाश पहुँचानेके लिये भगवान्‌ने श्रीपोद्दारजीको चुना था।

—श्री के० पी० प्रभाकरन नायर

जैसे देवर्षि नारद, सनकादिक, दत्तात्रेय, शुकदेव, मैत्रेय, मनु प्रभृति ऋषि-मुनि तथा शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, गोरखनाथ, भर्तृहरि, तुलसीदास, ज्ञानदेव, समर्थ रामदास, रामकृष्ण परमहंस आदि महापुरुषोंको समय-समयपर जगत्‌में भेजकर भगवान्‌ने धर्म-कर्म-परम्पराकी रक्षा की, उसी क्रममें पोद्दारजीको भी घोर कलिकालमें भेजकर भगवान्‌ने धर्म एवं संस्कृतिकी रक्षा करवायी है।

—श्रीपरमहंसजी महाराज

पुण्यश्लोक श्रीपोद्दारजीकी स्मृति आते ही मन सहसा कह उठता है कि भगवान्‌ने स्वयं ही श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीके रूपमें जन्म लेकर धर्म संस्थापन किया है।—'धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे'।

डा० श्रीलोकेशचन्द्रजी

दास तो उन्हें देवताका ही अवतार मानता है, जो लोककल्याणार्थ भगवत्कार्यके लिये पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए थे।

—वीणा महाराज श्रीरामदत्तजी पर्वतीकर

भगवान् महावीरने चार प्रकारके पुरुष बतलाये हैं—

१– कुछ व्यक्ति समुद्रको तैरनेका संकल्प करते हैं, पर गोपदको तैर पाते हैं।

२– कुछ व्यक्ति गोपदको तैरनेका संकल्प करते हैं, पर समुद्रको तैर जाते हैं।

३– कुछ व्यक्ति समुद्रको तैरनेका संकल्प करते हैं और उसे तैर जाते हैं।

४– कुछ व्यक्ति गोपदको तैरनेका संकल्प करते हैं और उसे ही तैर पाते हैं।

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार तीसरी कोटिके व्यक्ति थे। उनका संकल्प उत्पत्ति और निष्पत्ति दोनोंमें क्षमताशील था। उन्होंने अपने जीवनमें महान् संकल्प किये और सफलतापूर्वक उन्हें आकार दिया। मेरी मान्यताके अनुसार वैदिक धर्मकी बहुमुखी सेवा करनेवाले ऐसे व्यक्ति आसपासकी शताब्दियोंमें विरल

ही हुए हैं। वे आध्यात्मिक पुरुष थे। प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों संघर्षोंमें मैंने उनकी आध्यात्मिकताको यथार्थ रूपमें पाया।

—आचार्य श्रीतुलसीजी महाराज

मैं तीन दशकोंसे भी अधिक समयसे श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारको 'कल्याण'में प्रकाशित उनके लेखोंके माध्यमसे जानता हू और मैं कह सकता हूँ कि श्रीपोद्दारजीका जीवन एक उत्थानकारी और महान उद्देश्यके प्रति पूर्ण समर्पित था, एक सच्चा हिन्दू जो कुछ बननेकी आकांक्षा कर सकता है, उसका उदाहरण था।

—श्रीमन्महाराजाधिराज श्रीनेपाल नरेश

संसारमें जब-जब धर्मकी ग्लानि होती है, तब-तब भगवान् अवतार लेते हैं। उनके पास कुछ मुक्त आत्माएँ भी रहती हैं। भगवान् उनके द्वारा भी धर्मकी रक्षा कराते हैं। श्रीपोद्दारजी ऐसी ही आत्माओंमेंसे थे, जिन्होंने ऐसे कठिन समयमें जीवनपर्यन्त धर्मकी रक्षा की।

—श्रीपीताम्बरापीठाधिपति स्वामीजी महाराज

अनेकों पुण्यश्लोक व्यक्ति भारतवर्षमें पैदा हुए हैं। संसारमें अन्यत्र कहीं भी इतने पुण्यश्लोक व्यक्ति नहीं हुए। जिन असंख्य महापुरुषोंने भारतमें जन्म लिया, उनमेंसे वाल्मीकि, व्यास, शंकर, रामकृष्ण, विजयकृष्ण

गोस्वामी, संतदास बाबाजी आदि केवल कुछ चुने हुए महापुरुषोंकी सूचीमें हम भव्य प्रकाशयुक्त नक्षत्रस्वरूप महात्मा हनुमानप्रसादजी पोद्दारको सम्मिलित कर सकते हैं। उनके कार्योंका सम्यक् मूल्याङ्कन असम्भव है।

—श्रीवसन्तकुमारजी चट्टोपाध्याय

भारतके गौरवकी पुनः स्थापनामें उनका योगदान इतना अप्रतिम है कि उन्हें रामायणकालीन हनुमानका प्रतिरूप माना जा सकता है।

—श्री के० हनुमन्थैया

हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृतिके महान् अध्वर्यु श्रीपोद्दारजीने विश्वमें हिन्दू धर्मके प्रचार तथा प्रसारके लिये आजीवन प्रयत्न किया, जो हमारे राष्ट्रीय इतिहासमें सदैव सुरक्षित रहेगा।

—श्रीअटलविहारीजी बाजपेयी

अध्यक्ष-भारतीय जनसंघ

श्रीमान् हनुमानप्रसादजी पोद्दार देशके सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक पुनर्जागरण रूप गगनके एक देदीप्यमान ज्योति-पुञ्ज थे। गीताप्रेस और 'कल्याण'को अत्यन्त सामान्य स्थितिसे प्रारम्भ करके आध्यात्मिक भारतके अविच्छेद्य अङ्गके रूपमें प्रतिष्ठित करनेका श्रेय श्रीपोद्दारजीको है। उनका जीवन तपस्यामय था।

कठिन परीक्षाओं तथा कष्टोंके उपरान्त भी वे उत्साह और विश्वासके अटूट खजाने थे। वे गुण उनके उद्देश्यकी महानता और उसके प्रति उनके एकनिष्ठ एवं निष्काम समर्पणके सहज परिणाम थे। श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार भारतके वास्तविक महान पुरुषोंमेंसे थे। भौतिक प्रतिदान अथवा ख्यातिकी रंचमात्र भी कामना न रखते हुए अपना कर्त्तव्य पूरा करनेमें ही उनकी आस्था थी। वे एक सच्चे कर्मयोगी थे। यह तथ्य कि इस युगमें भी भारत उन-जैसे महापुरुषोंको जन्म दे सकता है, हमारी संस्कृतिके सामर्थ्य एवं सम्पन्नताका परिचायक है।

—श्रीशान्तिस्वरूपजी धवन

भूतपूर्व राज्यपाल, पश्चिम बंगाल

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार वह व्यक्ति थे, जिनकी धर्ममें सच्ची आस्था थी और जिन्होंने सच्चे अर्थमें धर्ममय जीवन बिताया। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन हमारी महान सांस्कृतिक परम्पराको समाजके समक्ष प्रस्तुत करनेमें समर्पित कर दिया, जिससे कि हमारे राष्ट्रका पुनर्निर्माण हमारी संस्कृतिकी सुदृढ़ नींवपर हो सके और वह अत्यन्त प्राचीनकालमें प्राप्त गौरवसे भी अधिक गौरव प्राप्त करनेमें समर्थ हो सके।

—श्रीमोरारजी देसाई

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार आधुनिक भारतकी विभूतियोंमें हैं। आधुनिक जगत्‌में गीताप्रेसके माध्यमसे विश्वमें एकताकी भावना जाग्रत करनेवाले हमारे धार्मिक एवं दार्शनिक आदर्शोंका प्रचारकर श्रीपोद्दारजीने बहुमूल्य सेवा की है। यदि उत्तर भारतकी जनतामें अभीतक आध्यात्मिकता बनी हुई है, तो यह अधिकांशमें श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारके निर्देशन एवं देखरेखके अन्तर्गत गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित धार्मिक साहित्यके कारण है।

—श्रीअनन्तशयनम् आयंगार
भूतपूर्व राज्यपाल

भगवद्भक्ति उनके रोम-रोममें एकरस हो गयी थी। हृदय उनका सरल और सरस था। किसीको दुःखी नहीं देख सकते थे। अन्तरके करुणाका स्रोत सदा बहता रहता था।

—श्रीवियोगी हरिजी

श्रीभाईजी धनी नहीं थे, लेकिन दीन-दुखियोंके लिये वे कुबेरके समान थे।

—श्रीभागीरथजी कानोड़िया

श्रीपोद्दारजीको 'आधुनिक युगका कर्ण' कहा जा सकता है।

—पं० श्रीसुरतिनारायण मणिजी त्रिपाठी

श्रीपोद्दारजीकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उनका हृदय स्पन्दनशील था।

—श्रीयशपालजी जैन

चन्दनकी भाँति वे स्वयंको घिसकर दूसरोंको सुगन्ध देते रहे।

—श्रीगोपालस्वरूपजी पाठक

श्रीभाईजीके गुणोंके सुगन्धसे युगोंतक आनेवाली पीढ़ी सुवासित रहेगी।

—श्रीप्रेमाचार्यजी शास्त्री

भाईजीने श्रीराधा-प्रेमकी जो अद्भुत ज्योति जगायी है, उसका प्रकाश अब दूर-दूरतक फैल चुका है। उनके द्वारा रचित 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' ग्रन्थ इस दिशामें बड़ा ठोस कार्य है। उनके सुदीर्घ अनुभव और उनकी मजी हुई लेखनीने प्रेम-तत्त्वके व्याख्यानमें एक नयी दिशा दिखलायी है, जो सरल और सुबोध होते हुए भी मार्मिक है।

—आचार्य श्रीललिताचरणजी गोस्वामी

'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' ग्रन्थमें लेखकने प्रेम-तत्त्वका जो चित्र खींचा है, वह यथार्थमें श्रीविहारिणीजी एवं श्रीविहारीजीकी अपनी देन प्रतीत

होती है। पोद्दारजीके लेखोंकी शृङ्खलासे यह प्रतीत होता है कि यह सज्जन उस पवित्रतम भूमिकापर आरूढ़ है, जहाँ परमैकान्तिक जन श्रीस्वामिनीवल्लभके कृपाकटाक्षसे प्लावितहृदय ज्ञानी-महानुभाव रस-मानसमें मरालवत् विहार करते हैं। इस भावनामें पगे हुए श्रीपोद्दारजीका जीवन ही मानो परम शेषी श्रीदिव्य दम्पतिके सुखविकासार्थ एवं परमामोदके लिये ही संसारमें है, अन्यथा इनका शरीर धारण करना निज-कृत कर्माकर्म-भोगके लिये सिद्ध नहीं हो रहा है।

—स्वामी श्रीकमलनयनाचार्यजी शास्त्री

श्रीराधा-माधव-चिन्तन आदि साहित्य निश्चित ही किसी व्यक्ति विशेषकी अपनी कृति नहीं हो सकता। मुझे तो ऐसा अनुभव होने लगा मानो भाईजीके माध्यमसे श्रीराधारानीने स्वयं ही अपने कुछ मार्मिक उद्गार भक्तोंको वरदोपहारके रूपमें प्रदान किये हैं। श्रीभाईजीपर करुणामयी रासेश्वरी महारानीकी असीम कृपा मालूम पड़ती है, तभी वे इस निगूढ़ तत्त्वके प्रतिपादनमें सक्षम हो पाये हैं।

—शास्त्रार्थ महारथी पं० श्रीमाधवाचार्यजी महाराज

(श्रीपोद्दारजीकी 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' नामक) पुस्तकको मनोयोग पूर्वक पढ़ लेनेके बाद मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि पुस्तकके सात प्रकरण राधारानीके

पग-नूपुरोंको झनकारके सात स्वर हैं, जिनसे अनवरत राधा-रस झर रहा है।

—पं० श्रीदेवदत्तजी शास्त्री

'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' पढ़ गया हूँ। भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी सभी रचनाओंमें भक्तिकी महिमा प्रकट होती है, पर यह ग्रन्थ तो भक्ति भावना और शास्त्रीय चिन्तनका अद्भुत समन्वय है। यह भाईजी जैसे भक्तकी लेखनीसे ही लिखा जा सकता है। श्रीराधारानीके दिव्य रूप और भगवान श्रीकृष्णके चिद्घन विग्रह रूपका विवेचन इस प्रकारकी सहज वाणीमें वही कर सकता है, जिसने उन्हें पाया है, सौ-सौ रूपोंमें साक्षात्कार किया है।

—आचार्य श्रीहजारीप्रसादजी द्विवेदी

'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' जैसी रचना श्रीहनुमानप्रसादजी जैसे भक्त और चिन्तकसे ही सम्भव है। उन्होंने भक्त जनोंका अमित उपकार किया है।

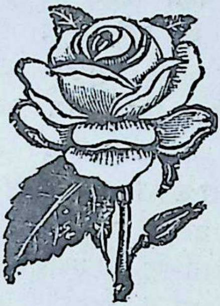
राष्ट्रकवि श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त

'श्रीराधा - माधव - चिन्तन'के कुछ अंश पढ़े। श्रीपोद्दारजीकी साहित्य-सेवापर हम सबको गर्व है। इस पुस्तकका धार्मिक मूल्य तो है ही, साहित्यिक मूल्य भी उल्लेखनीय है।

—आचार्य श्रीगुलाब रायजी

इस ('पद-रत्नाकर' जैसे) अनुपम रसानुभूतिके ग्रन्थको बार-बार पढ़कर संत सूरदासकी काव्य मन्दाकिनीमें अवगाहनका आनन्द प्राप्त होता है। भाईजी कितने बड़े भक्त कवि थे, यह 'पद-रत्नाकर'को पढ़कर आज ही ज्ञात हो सका।

—डा० श्रीरामकुमारजी वर्मा



प्रेम निर्झर श्रीपोद्दारजी

(रचयिता-श्रीमाधवशरणजी श्रीवास्तव)

वे बहते रहते थे झर-झर ।
प्रेमामृतका झरना बनकर ॥
करने एक विशेष कार्यको,
भेजा भूपर हरिने उनको ।
उसी कार्यकी सिद्धि हेतु ही,
होम दिया सारे जीवनको ॥
कौन मिलेगा ऐसा तत्पर ।
वे बहते रहते थे झर-झर ॥
ले आये थे हरि हाथ थाम,
करवानेको वह मुख्य काम ।
जिससे फिर हिन्दू धर्म-ध्वजा,
ने लिया चूम रवि-चन्द्र-धाम ।
लहरा-लहरा कर रही फहर ।
वे बहते रहते थे झर-झर ॥
निकला मासिक 'कल्याण' पत्र,
आध्यात्मिकता खुला सत्र ।
पाकर प्रसादको इस पौष्टिक,
इहलोक तृप्त, पूरित परत्र ॥
मच गयी धूम इसकी घर-घर ।
वे बहते रहते थे झर-झर ॥

राधा - माधव - लीला रसमय,
राधा - माधव - लीला मधुमय।
उसमें प्रविष्ट हो उसमें लय,
अनुभूतिपूर्ण तात्त्विक परिचय॥
कर दिया प्रकट इस पृथ्वीपर।
वे बहते रहते थे झर-झर॥
जन - जनको जीनव-दान दिया,
सारे जगका कल्याण किया।
जिसकी नौका डूबती मिली,
पतवार उसीकी थाम लिया॥
करुणाकर ऐसा कौन अमर।
वे बहते रहते थे झर-झर॥
जब जहाँ कहीं आया संकट,
दुर्भिक्ष, बाढ़, हिमपात विकट।
हो जाती थी तब वहाँ सदा,
उनकी सहायता सहज प्रकट॥
दुखियोंका दुख लेते थे हर।
वे बहते रहते थे झर-झर॥
'कल्याण' पत्रके संग - संग,
अध्यात्म - परक पावन प्रसंग।
वाले रामायण गीतादिक,
ग्रन्थोंकी सरिता—थे तरंग॥
जिसके उत्ताल—चलो बहकर।
वे बहते रहते थे झर-झर॥

देवों - संतोंके चित्र ललित,
उनके श्रीकरसे सम्पादित ।
'कल्याण' पत्र, सद्ग्रन्थ अमित,
को छाप हुए सर्वत्र विदित ।।

गीताप्रेस, गोरखपुर नगर ।
वे बहते रहते थे झर-झर ।।

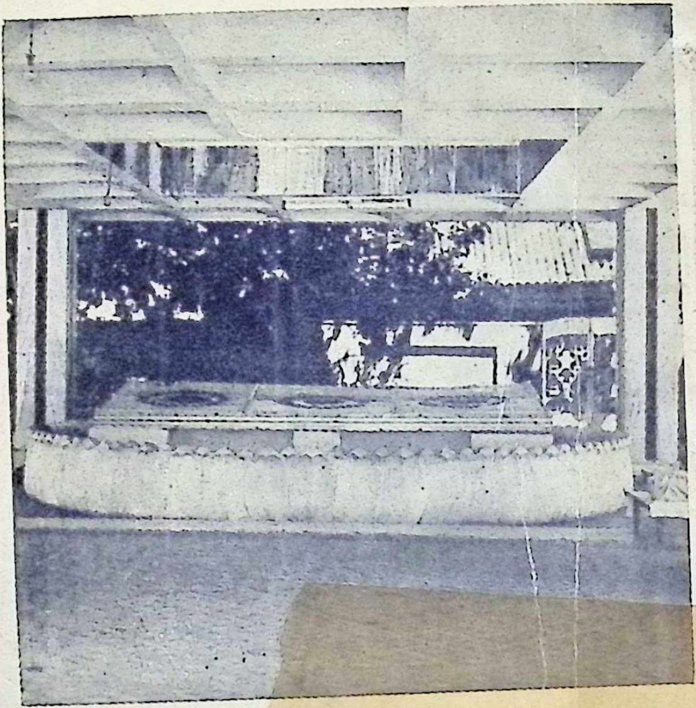
उनका निवास, गीता - उपवन,
कोना - कोना इसका पावन ।
इनके पदांक - पारस को छू,
इस धरतीका कण-कण कंचन ।।

उनकी समाधि इसके भीतर ।
वे बहते रहते थे झर-झर ।।

उनके निवासको नमो - नमन,
उनकी समाधिको है प्रणमन ।
उनकी गुणावली, नाम, धाम,
करुणा, चरित्रका अनुचिन्तन ।।

कर सिर नत, दृग् आते भर-भर ।
वे बहते रहते थे झर-झर ।।

২৫৪.৬৫২
[illegible]



श्रीपोद्दारजीकी पावन समाधि